पाठ पहला

णमोकार महामंत्र

णमो अरहंताणं,
णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।।

लोक में सब अरहंतों को नमस्कार हो, सब सिद्धों को नमस्कार हो, सब आचार्यों को नमस्कार हो, सब उपाध्यायों को नमस्कार हो और सब साधुओं को नमस्कार हो।

णमोकार मंत्र की महिमा

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होहि मंगलम्।।

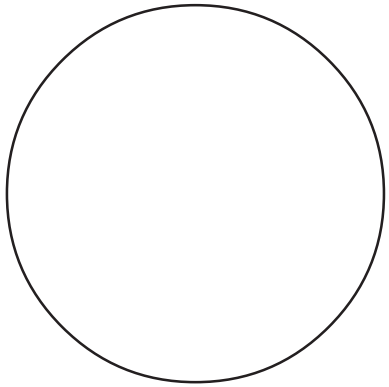

अरहंत परमेष्ठी

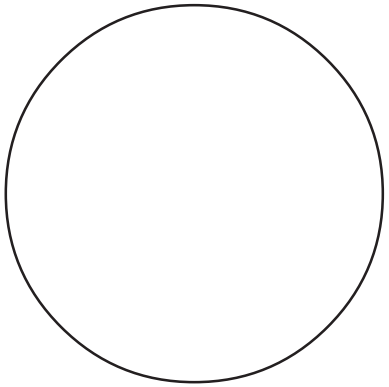

सिद्ध परमेष्ठी

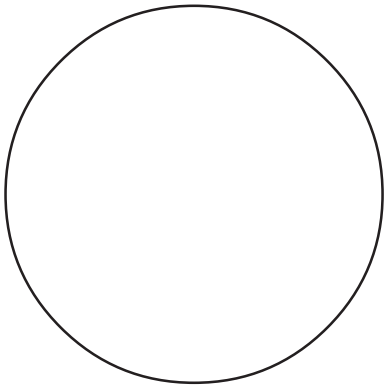

आचार्य परमेष्ठी

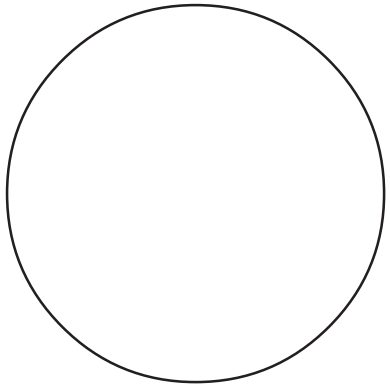

उपाध्याय परमेष्ठी

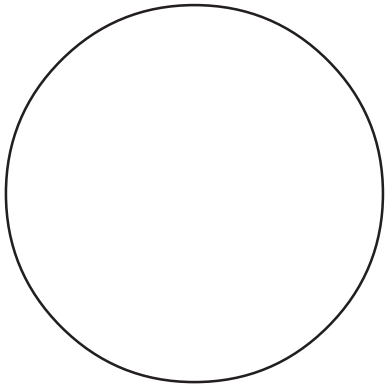

साधु परमेष्ठी

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करनेवाला है तथा सब मंगलों में पहला मंगल है।

यह मंत्र मोह-राग-द्वेष का अभाव करनेवाला और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करानेवाला है।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँचों परमेष्ठी कहलाते हैं। जो जीव इन पाँचों परमेष्ठियों को पहिचान कर उनके बताये हुए मार्ग पर चलता है उसे सच्चा सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न -

१. णमोकार मंत्र शुद्ध बोलिए।

२. इस मंत्र में किसको नमस्कार किया गया है ?

३. इस मंत्र के स्मरण से क्या लाभ है ?

४. पंच परमेष्ठियों के नाम बताइये।

५. सच्चा सुख कैसे प्राप्त होता है ?

पाठ दूसरा

चार मंगल

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि।

लोक में चार मंगल हैं। अरहंत भगवान मंगल हैं, सिद्ध भगवान मंगल हैं, साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) मंगल हैं तथा केवली भगवान द्वारा बताया गया वीतराग धर्म मंगल है।

जो मोह-राग-द्वेषरूपी पापों को गलावे और सच्चा सुख उत्पन्न करे, उसे मंगल कहते हैं। अरहंतादिक स्वयं मंगलमय हैं और उनमें भक्तिभाव होने से परम मंगल होता है।

लोक में चार उत्तम हैं। अरहंत भगवान उत्तम हैं, सिद्ध भगवान उत्तम हैं, साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) उत्तम हैं तथा केवली भगवान द्वारा बताया हुआ वीतराग धर्म उत्तम हैं।

लोक में जो सबसे महान हो, उसे उत्तम कहते हैं। लोक में ये चारों सबसे महान हैं, अतः उत्तम हैं।

मैं चारों की शरण में जाता हूँ। अरहंत भगवान की शरण में जाता हूँ, सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ, साधुओं (आचार्य, उपाध्याय, और साधु) की शरण में जाता हूँ और केवली भगवान द्वारा बताये गये वीतराग धर्म की शरण में जाता हूँ।

शरण सहारे को कहते हैं। पंचपरमेष्ठी द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा की शरण लेना ही पंचपरमेष्ठी की शरण है।

जो व्यक्ति पंचपरमेष्ठी की शरण लेता है उसका कल्याण होता है अर्थात् दुःख (भव-भ्रमण) मिट जाता है।

प्रश्न -

१. मंगल, उत्तम और शरण शब्द का अर्थ समझाइये।
२. हमें किसकी शरण लेना चाहिए?
३. आत्मा का हित किस बात में है?
४. चत्तारि मंगलं आदि पाठ को शुद्ध बोलिए।
५. पंचपरमेष्ठी की शरण का क्या अर्थ है ?

पाठ तीसरा

तीर्थंकर भगवान

छात्र - गुरुजी ! बाहुबली क्या भगवान नहीं हैं ?

अध्यापक - क्यों नहीं हैं ?

छात्र - चौबीस भगवानों में तो उनका नाम आता ही नहीं है।

अध्यापक - चौबीस तो तीर्थंकर होते हैं। जो वीतरागी और सर्वज्ञ हैं, वे सभी भगवान हैं। अरहंत परमेष्ठी और सिद्ध परमेष्ठी भगवान ही तो हैं।

छात्र - क्या तीर्थंकर भगवान नहीं होते ?

अध्यापक - तीर्थंकर तो भगवान होते ही हैं पर साथ ही जो तीर्थंकर न हों पर वीतरागी और पूर्णज्ञानी हों, वे अरहंत और सिद्ध भी भगवान हैं।

छात्र - तो तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

अध्यापक - जो धर्मतीर्थ (मुक्ति का मार्ग) का उपदेश देते हैं, समवशरण आदि विभूति से युक्त होते हैं और जिनको तीर्थंकर नामकर्म नाम का महापुण्य का उदय होता है, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। वे चौबीस होते हैं।

छात्र - कृपया चौबीसों के नाम बताइए ?

अध्यापक -

१.	ऋषभदेव (आदिनाथ)	१३.	विमलनाथ
२.	अजितनाथ	१४.	अनंतनाथ
३.	संभवनाथ	१५.	धर्मनाथ
४.	अभिनन्दन	१६.	शान्तिनाथ
५.	सुमतिनाथ	१७.	कुन्थुनाथ
६.	पद्मप्रभ	१८.	अरनाथ
७.	सुपार्श्वनाथ	१९.	मल्लिनाथ
८.	चन्द्रप्रभ	२०.	मुनिसुव्रत
९.	पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)	२१.	नमिनाथ
१०.	शीतलनाथ	२२.	नेमिनाथ
११.	श्रेयांसनाथ	२३.	पार्श्वनाथ
१२.	वासुपूज्य	२४.	महावीर

(वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, सन्मति)

छात्र - इनका तो याद रहना कठिन है।

अध्यापक - कठिन नहीं है। हम तुम्हें एक छन्द सुनाते हैं, उसे याद कर लेना, फिर याद रखने में सरलता होगी।

छन्द ऋषभ[१] अजित[२] संभव[३] अभिनन्दन[४],
सुमति[५] पदम[६] सुपार्श्व[७] जिनराय।
चन्द्र[८] पुहुप[९] शीतल[१०] श्रेयांस[११] जिन,
वासुपूज्य[१२] पूजित सुरराय।।
विमल[१३] अनन्त[१४] धर्म[१५] जस उज्ज्वल,
शान्ति[१६] कुन्थु[१७] अर[१८] मल्लि[१९] मनाय।
मुनिसुव्रत[२०] नमि[२१] नेमि[२२] पार्श्व[२३] प्रभु,
वर्द्धमान[२४] पद पुष्प चढ़ाय।।

छात्र - इनके जानने से क्या लाभ है ?

अध्यापक - इनके उपदेश को समझकर उस पर चलने से हम सब भी भगवान बन सकते हैं।

प्रश्न -

१. भगवान किसे कहते हैं ?
२. तीर्थंकर किसे कहते हैं ?
३. तीर्थंकर और भगवान में क्या अंतर है ? क्या प्रत्येक भगवान तीर्थंकर होते हैं ?
४. तीर्थंकर कितने होते हैं ? नाम सहित बताइए।
५. क्या भगवान भी चौबीस ही होते हैं ?
६. पहले, पाँचवें, आठवें, तेरहवें, सोलहवें, बीसवें, बाईसवें और चौबीसवें तीर्थंकरों के नाम बताइये।
७. एक से अधिक नाम किन-किन तीर्थंकरों के हैं ? नाम सहित बताइये।

१-२४ चौबीस तीर्थंकरों के नाम।

पाठ चौथा

देवदर्शन

दिनेश - जिनेश ! ओ जिनेश !! कहाँ जा रहे हो ?

जिनेश - मन्दिरजी।

दिनेश - क्यों ?

जिनेश - जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने।

दिनेश - अच्छा मैं भी चलता हूँ।

जिनेश - तुम चलोगे तो चलो; पर पहिले यह चमड़े की पट्टी (बेल्ट) घर खोलकर आओ। तुम्हें पता नहीं मन्दिर में चमड़े से बनी वस्तुएँ लेकर नहीं जाना चाहिए।

दिनेश - अच्छा भाई ! मैं अभी खोलकर आया।

(दोनों मन्दिर पहुँचते हैं)

जिनेश - अरे भाई ! कहाँ चले जा रहे हो ? जूते तो यहीं खोल दो। मन्दिर के भीतर चप्पल, जूते पहिने हुए नहीं जाते। मालूम होता है पहिले तुम कभी मन्दिर आये ही नहीं, इसीकारण दर्शन करने की विधि भी नहीं जानते।

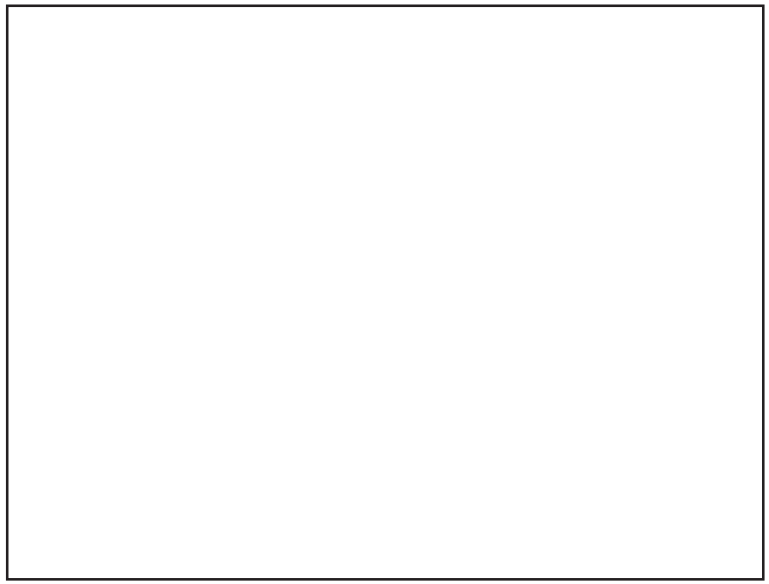

दिनेश - हाँ भाई, नहीं जानता, अब तुम बताओ।

जिनेश - सुनो ! मन्दिर के दरवाजे पर पानी रखा रहता है। हमें चाहिए कि सबसे पहिले चप्पल-जूते खोलकर पानी से हाथ-पैर धोकर फिर भगवान की जयजयकार करते हुए तथा तीन बार नि:सहि नि:सहि नि:सहि बोलते हुए मन्दिर में प्रवेश करें।

दिनेश - नि:सहि का क्या अर्थ होता है ?

जिनेश - नि:सहि का अर्थ है सर्व सांसारिक कार्यों का निषेध। तात्पर्य यह है कि संसार के सब कार्यों की उलझन छोड़ कर मन्दिर में प्रवेश करें।

दिनेश - उसके बाद ?

जिनेश - उसके बाद भगवान की वेदी के सामने ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु णमो अरहंताणं आदि णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगलं आदि पाठ बोलते हुए जिनेन्द्र

भगवान को अष्टांग नमस्कार करें। इसके बाद चित्त को एकाग्र करके भगवान की स्तुति पढ़ते हुए तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए। उसके बाद फिर भगवान को नमस्कार कर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिए।

दिनेश - अच्छा तो शान्ति से इस प्रकार चित्त एकाग्र करके भगवान का दर्शन करना चाहिए। और.....

जिनेश - और क्या ? उसके बाद शान्ति से बैठकर कम से कम आधा घंटा शास्त्र पढ़ना चाहिए। यदि मन्दिरजी में उस समय प्रवचन होता हो तो वह सुनना चाहिए।

दिनेश - बस.....।

जिनेश - बस क्या ? जो शास्त्र में पढ़ा हो अथवा प्रवचन में सुना हो, उसे थोड़ी देर बैठकर मनन करना चाहिए तथा सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? भगवान कौन हैं ? मैं स्वयं भगवान कैसे बन सकता हूँ ? आदि, आदि।

दिनेश - इन सबसे क्या लाभ होगा ?

जिनेश - इससे आत्मा में शान्ति प्राप्त होती है। परिणामों में निर्मलता आती है। मन्दिर में आत्मा की चर्चा होती है। अत: यदि हम आत्मा को समझकर उसमें लीन हो जावें तो परमात्मा बन सकते हैं।

प्रश्न -

१. देवदर्शन की विधि अपने शब्दों में बोलिए।
२. मन्दिर में कैसे और क्यों जाना चाहिए ?
३. मन्दिर में कौन-कौन वस्तु नहीं ले जाना चाहिए?
४. देवदर्शन करते समय क्या बोलना चाहिए ?
५. मन्दिर में क्या-क्या करना चाहिए ?

पाठ पाँचवाँ

जीव-अजीव

हीरालाल - मेरा कितना अच्छा नाम है ?

ज्ञानचंद - अहा ! बहुत अच्छा नाम है! अरे भाई ! हीरा कीमती अवश्य होता है, परन्तु है तो अजीव ही न? आखिर क्या तुम जीव (चेतन) से अजीव बनना पसन्द करते हो ?

हीरालाल - अरे भाई ! यह जीव-अजीव क्या है ?

ज्ञानचन्द - जीव ! जीव नहीं जानते ? तुम जीव ही तो हो। जो ज्ञाता-द्रष्टा है, वही जीव है। जो जानता है, जिसमें ज्ञान है, वही जीव है।

हीरालाल - और अजीव ?

ज्ञानचन्द - जिसमें ज्ञान नहीं है, जो जान नहीं सकता, वही अजीव है। जैसे हम तुम जानते हैं, अत: जीव हैं।

हीरा, सोना, चाँदी, टेबल, कुर्सी जानते नहीं हैं, अत: अजीव हैं।

हीरालाल - जीव-अजीव की और क्या पहिचान है ?

ज्ञानचन्द - जीव सुख व दु:ख का अनुभव करता है, अजीव में सुख-दु:ख नहीं होता। हम तुम सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं, अत: जीव हैं। टेबल, कुर्सी सुख-दु:ख का अनुभव नहीं करते, अत: अजीव हैं।

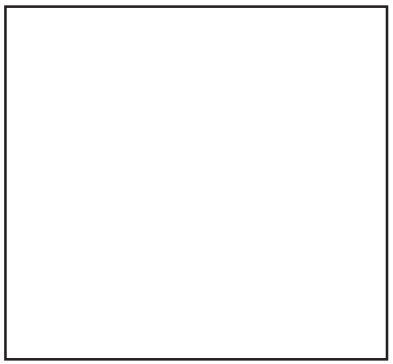

ये (टेबल और शरीर) अजीव हैं।

हीरालाल - आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, शरीर में सुख-दु:ख होता है, तो अपना शरीर तो जीव है न ?

ज्ञानचन्द - नहीं भाई ! आँख थोड़े ही देखती है, कान थोड़े ही सुनते हैं, देखने-सुनने वाला इनसे अलग कोई जीव (आत्मा) है। यदि आँख देखे और कान सुने तो मुर्दे (मरा शरीर) को भी देखना-सुनना चाहिए। इसीलिए तो कहा है कि शरीर अजीव है और आँख, कान आदि शरीर के ही हिस्से हैं, अत: वे भी अजीव हैं।

हीरालाल - अच्छा भाई ज्ञानचन्द, अब मैं समझ गया कि :-

मैं जीव हूँ।

शरीर अजीव है।

मुझ में ज्ञान है।
शरीर में ज्ञान नहीं है।
मैं जानता हूँ।
शरीर कुछ जानता नहीं है।

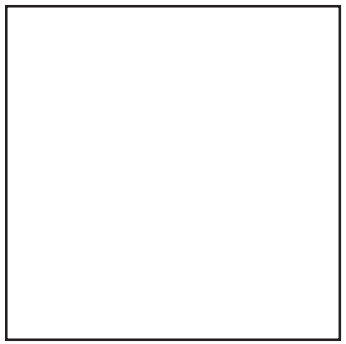

मैं जीव हूँ।

ज्ञानचन्द - समझ गये तो बताओ, हाथी जीव है या अजीव ?

हीरालाल - जैसे हमारा शरीर अजीव है, वैसे ही हाथी आदि सब जीवों का शरीर भी अजीव है, पर उनकी आत्मा तो जीव ही है।

यह समझ तो लिया, पर इसके जानने से लाभ क्या है ? यह भी तो बताओ।

ज्ञानचन्द - इसको जाने बिना आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती और आत्मा की पहिचान बिना सच्चा सुख नहीं मिल सकता तथा हमें सुखी होना है, इसलिए इनका ज्ञान करना भी आवश्यक है।

जीव-अजीव का ज्ञान कर हम स्वयं भगवान बन सकते हैं।

प्रश्न -

१. जीव किसे कहते हैं ?
२. अजीव किसे कहते हैं ?
३. नीचे लिखी वस्तुओं में जीव-अजीव की पहिचान करो :-
हाथी, तुम, कुर्सी, मकान, रेल, कान, आँख, रोटी, हवाई जहाज, हवा, आग।
४. जीव-अजीव की पहिचान से क्या लाभ है ?

पाठ छठवाँ

दिनचर्या

अध्यापक - बालको ! आज हम तुम्हारे नाखून और दाँत देखेंगे। अच्छा, बोलो रमेश ! तुम कितने दिनों से नहीं नहाये?

रमेश - जी, मैं तो रोज नहाता हूँ।

अध्यापक - प्रतिदिन नहाने वाले के हाथ-पैर इतने गंदे नहीं होते हैं। हो सकता है तुम रोज नहाते हो, पर दो लोटे पानी सिर पर डाल लेना ही नहाना नहीं है, हमें अच्छी तरह मल-मल कर नहाना चाहिए।

इसीप्रकार हमें अपने दाँत साफ करने के लिए प्रतिदिन प्रात:काल मंजन भी करना चाहिए। जो बच्चे मंजन नहीं करते हैं उनके मुँह से बदबू आती रहती है, उनके दाँत कमजोर हो जाते हैं और गिर जाते हैं।

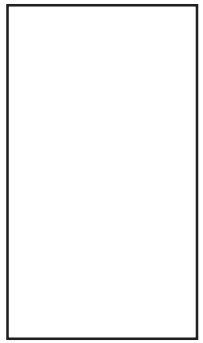

सुरेश - गुरुजी ! मैं तो शाम को नहाता हूँ।

अध्यापक - नहीं, हमें प्रत्येक काम समय पर करना चाहिए। तभी ठीक रहता है। हमें प्रतिदिन की दिनचर्या बना लेना चाहिए और फिर उसके अनुसार अपना दैनिक कार्य निबटाना चाहिए।

रमेश - गुरुजी ! हमारी दिनचर्या आप ही बना दें। हम आज से उसके अनुसार ही कार्य करेंगे।

अध्यापक - प्रत्येक बालक को चाहिए कि वह सूर्योदय होने के पूर्व बिस्तर छोड़ दे। सबसे पहले नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें, फिर थोड़ी देर आत्मा के स्वरूप का विचार कर मन को शुद्ध करें।

सुरेश - क्या मन भी अशुद्ध होता है ?

अध्यापक - हाँ भाई, जिस तरह बाह्य गंदगी हमारे शरीर को गंदा कर देती है, उसी प्रकार मोह-राग-द्वेष आदि विकारी भावों से हमारा मन (आत्मा) गंदा हो जाता है। जिस प्रकार स्नान, मंजन आदि द्वारा हमारी देह साफ हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा के चिंतन से हमारा मन (आत्मा) पवित्र होता है।

हमें अंतर और बाहर दोनों की पवित्रता पर ध्यान देना चाहिए।

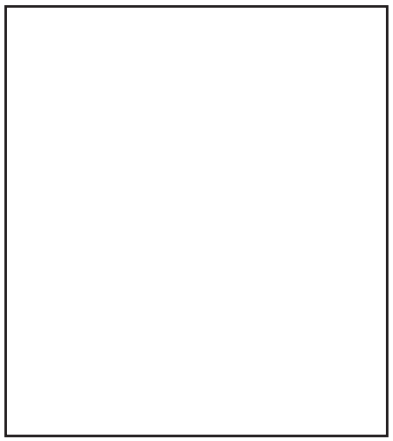

रमेश - उसके बाद ?

अध्यापक - उसके बाद शौच

(टट्टी) आदि से निपट कर मंजन करके स्नान करे तथा शुद्ध साफ धुले हुए कपड़े पहिन कर मंदिरजी में देवदर्शन करने जाना चाहिए।

देवदर्शन की विधि तो तुम्हें उस दिन समझाई थी। उसके बाद ही अल्पाहार (दूध, नाश्ता) लेकर यदि स्कूल और पाठशाला का समय हो वहाँ चले जाना चाहिए, नहीं तो घर पर ही स्वयं अध्ययन करना चाहिए।

इसी प्रकार भोजन भी प्रतिदिन यथासमय १०-११ बजे शांतिपूर्वक करना चाहिए। शाम को दिन छिपने के पूर्व ही भोजन से निवृत्त हो जाना प्रत्येक बालक का कर्तव्य है। रात्रि को भोजन कभी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार रात्रि को भी जब तक तुम्हारा मन लगे ८-९ बजे तक अपना पाठ याद करना चाहिए। उसके बाद आत्मा और परमात्मा का स्मरण करते हुए स्वच्छ और साफ बिस्तर पर शांति से सो जाना चाहिए।

सब बालक - आज से हम आपकी बताई हुई दिनचर्या के अनुसार ही चलेंगे और शरीर की सफाई के साथ ही आत्मा की पवित्रता का भी ध्यान रखेंगे।

प्रश्न -

१. एक अच्छे बालक की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए ?
२. प्रातः सबसे पहले उठकर हमें क्या करना चाहिए ?
३. शारीरिक सफाई और मन की पवित्रता से क्या समझते हो ?
४. शारीरिक सफाई के लिए क्या-क्या करना चाहिए ?
५. मानसिक (आत्मिक) पवित्रता के लिए क्या-क्या करना चाहिए ?

पाठ सातवाँ

भगवान आदिनाथ

बेटी - माँ, चलो न घर !

माँ - चलती तो हूँ, जरा भक्तामरजी का पाठ कर लूँ।

बेटी - भक्तामरजी क्या है?

माँ - भक्तामर स्तोत्र एक स्तुति का नाम है, जिसमें भगवान आदिनाथ की स्तुति (भक्ति) की गई है।

बेटी - माँ, आदिनाथ कौन थे जिनकी स्तुति हजारों लोग प्रतिदिन करते हैं ?

माँ - वे भगवान थे। वे दुनियाँ की सब बातों को जानते थे तथा उनके मोह-राग-द्वेष नष्ट हो चुके थे, इस कारण परम सुखी थे।

बेटी - क्या वे जन्म से ही वीतरागी सर्वज्ञ थे ? उनका जन्म कहाँ हुआ था ?

माँ - नहीं बेटी ! उन्होंने वीतरागता और सर्वज्ञता पुरुषार्थ से प्राप्त की थी। उनका जन्म अयोध्या नगरी में वहाँ के राजा नाभिराय की रानी मरुदेवी के गर्भ से हुआ था।

बेटी - वे तो राजकुमार थे, क्या उन्होंने राज्य नहीं किया ?

माँ - राज्य किया, विवाह भी किया था। उनकी दो शादियाँ हुई थीं। पहली पत्नी का नाम नन्दा था, जिससे भरत चक्रवर्ती आदि सौ पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। दूसरी पत्नी का नाम सुनन्दा था, जिससे बाहुबली पुत्र और सुन्दरी नामक पुत्री उत्पन्न हुई।

बेटी - तो क्या भरत चक्रवर्ती और बाहुबली आदिनाथ भगवान के ही पुत्र थे?

माँ - भगवान तो वे बाद में बने। उस समय तो उनका नाम राजा ऋषभदेव था। प्रथम तीर्थंकर भगवान होने से उन्हें आदिनाथ भी कहने लगे।

एक दिन राजा ऋषभदेव अपनी सभा में बैठे नीलांजना का नृत्य देख रहे थे। नृत्य के बीच में ही नीलांजना की मृत्यु हो गई। यह देख उन्हें संसार की क्षणभंगुरता का ध्यान आया और राजपाट आदि सभी का राग छोड़कर दिगम्बर हो गये। छह माह तक तो आत्म-ध्यान में लीन रहे। उसके बाद छह माह तक आहार की विधि नहीं मिली।

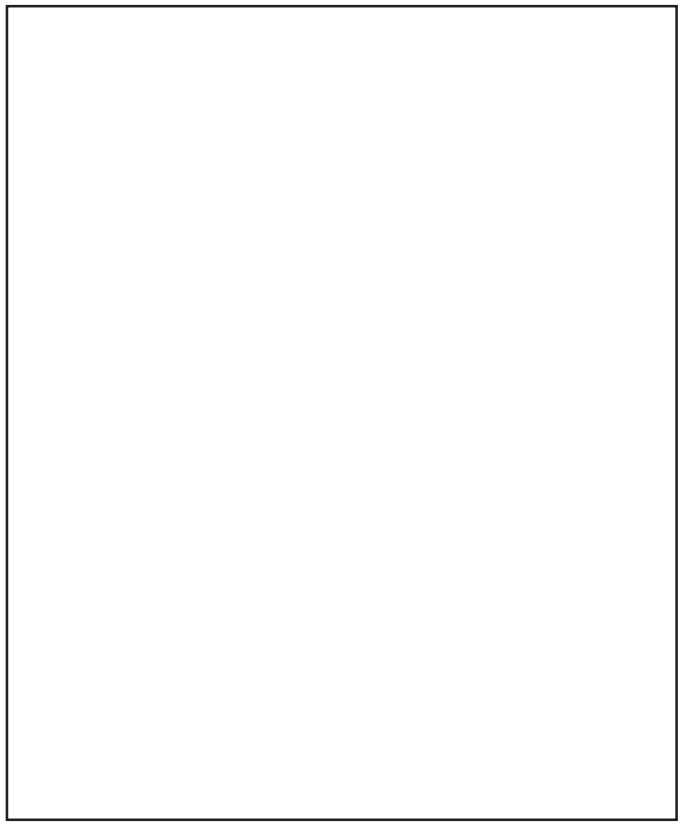

एक वर्ष बाद अक्षय तृतीया के दिन ऋषभ मुनि का सर्वप्रथम आहार राजा श्रेयांस के यहाँ इक्षुरस (गन्ने का रस) का हुआ। उसी दिन से अक्षय तृतीया पर्व चल पड़ा।

बेटी - क्या वे मुनि होते ही सर्वज्ञ बन गये थे ?

माँ - नहीं बेटी ! एक हजार वर्ष तक बराबर मौन आत्म-साधना करते रहे। एक दिन आत्म-तल्लीनता की दशा में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और वे वीतरागी सर्वज्ञ

बन गए तथा उनकी दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्वोपदेश होने लगा जिससे भव्य जीवों को मुक्ति के मार्ग का ज्ञान हुआ।

बेटी - तो तुम क्या उनकी ही स्तुति करती हो ? मैं भी किया करूँगी। क्या वे मुझे भी मुक्ति का मार्ग बतायेंगे ?

माँ - अवश्य किया करना। वे तो कुछ दिन बाद मुक्त हो गए थे अर्थात् धर्मसभा (समवशरण) आदि को भी छोड़कर सिद्ध हो गए। पर उनका बताया हुआ मुक्तिमार्ग तो आज तक भी ज्ञानियों के द्वारा हमें प्राप्त है और जो उनके बताए मुक्तिमार्ग पर चलें वे ही उनके सच्चे भक्त हैं तथा वे स्वयं भगवान भी बन सकते हैं।

प्रश्न -

१. भक्तामर स्तोत्र में किसकी स्तुति है ?
२. भगवान आदिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?
३. अक्षय तृतीया पर्व के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?
४. राजा ऋषभदेव भगवान आदिनाथ कैसे बने तथा उन्हें आदिनाथ क्यों कहा जाता है ?
५. उन्हें वैराग्य कैसे हुआ ?
६. क्या उनका बताया हुआ मुक्तिमार्ग हम पा सकते हैं ? यदि हाँ, तो कैसे ?

पाठ आठवाँ

मेरा धाम

शुद्धातम है मेरा नाम,
मात्र जानना मेरा काम।
मुक्तिपुरी है मेरा धाम[१],
मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम।।

जहाँ भूख का नाम नहीं है,
जहाँ प्यास का काम नहीं है।
खाँसी और जुखाम नहीं है,
आधि[२] व्याधि[३] का नाम नहीं है।।

सत्[४] शिव[५] सुन्दर मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम।।१।।

स्वपर भेद-विज्ञान करेंगे,
निज आतम का ध्यान धरेंगे।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे,
चिदानन्द[६] रस पान करेंगे।।

सब सुखदाता मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम।।२।।

---

१. निवास, २. मानसिक रोग, ३. शारीरिक रोग,
४. सच्चा, ५. कल्याणकारी, ६. आत्मा का आनन्द।

संकल्प -

'भगवान बनेंगे'

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्तभयों से नहीं डरेंगे।।
सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे।।
स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे।।
पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे।
गुरुजन का सम्मान करेंगे।।
जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे।।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे।।
निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोह भाव का नाश करेंगे।।
रागद्वेष का त्याग करेंगे।
और अधिक क्या? बोलो बालक!
भक्त नहीं, भगवान
ब न ें ग े । ।

पाठ पहला

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा।।
तृष्णा लोभ न बढ़े हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार।।
सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय-मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल।।
अष्ट करम जो दु:ख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा।।
हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े।।

देव-स्तुति का सारांश

यह स्तुति सच्चे देव की है। सच्चा देव उसे कहते हैं, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। वीतरागी वह है जो राग-द्वेष से रहित हो और जो लोकालोक के समस्त पदार्थों को एकसाथ जानता हो, वही सर्वज्ञ है। आत्महित का उपदेश देने वाला होने से वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी कहलाता है।

वीतराग भगवान से प्रार्थना करता हुआ भव्य जीव सबसे पहिले यही कहता है कि मैं मिथ्यात्व का नाश और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करूँ, क्योंकि मिथ्यात्व का नाश किए बिना धर्म का आरंभ ही नहीं होता है।

इसके बाद वह अपनी भावना व्यक्त करता हुआ कहता है कि मेरी प्रवृत्ति पाँचों पापों और कषायों में न जावे। मैं हिंसा न करूँ, झूठ न बोलूँ, चोरी न करूँ, कुशील सेवन न करूँ तथा लोभ के वशीभूत होकर परिग्रह संग्रह न करूँ, सदा सन्तोष धारण किए रहूँ और मेरा जीवन धर्म की सेवा में लगा रहे।

हम धर्म के नाम पर फैलने वाली कुरीतियों गृहीत मिथ्यात्वादि और सामाजिक कुरीतियों को दूर करके धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सही परम्पराओं का निर्माण करें तथा परस्पर में धर्म-प्रेम रखें।

हम सुख में प्रसन्न होकर फूल न जावें और दु:ख को देख कर घबड़ा न जावें, दोनों ही दशाओं में धैर्य से काम लेकर समताभाव रखें तथा न्याय-मार्ग पर चलते हुए निरन्तर आत्मबल में वृद्धि करते रहें।

आठों ही कर्म दु:ख के निमित्त हैं, कोई भी शुभाशुभ कर्म सुख का कारण नहीं है, अत: हम उनके नाश का उपाय करते रहें। आपका स्मरण सदा रखें जिससे सन्मार्ग में कोई विघ्न बाधायें न आवें।

हे भगवन् ! हम और कुछ भी नहीं चाहते हैं, हम तो मात्र यही चाहते हैं कि हमारी आत्मा पवित्र हो जावे और उसे मिथ्यात्वादि पापों रूपी मैल कभी भी मलिन न करे तथा लौकिक विद्या की उन्नति के साथ हमारा धर्मज्ञान (तत्त्वज्ञान) निरन्तर बढ़ता रहे।

हम सभी भव्य जीव खड़े हुए हाथ जोड़कर आपको नमस्कार कर रहे हैं, हम तो आपके चरणों की शरण में आ गये हैं, हमारी भावना अवश्य ही पूर्ण हो।

प्रश्न -

१. यह स्तुति किसकी है ? सच्चा देव किसे कहते हैं ?

२. पूरी स्तुति सुनाइये या लिखिए।

३. उक्त प्रार्थना का आशय अपने शब्दों में लिखिए।

४. निम्नांकित पंक्तियों का अर्थ लिखिए :-

''ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।''

''दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।।''

''अष्ट करम जो दु:ख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।।''

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त-वाक्य -

१. जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो, वही सच्चा देव है।

२. जो राग-द्वेष से रहित हो, वही वीतरागी है।

३. जो लोकालोक के समस्त पदार्थों को एकसाथ जानता हो, वही सर्वज्ञ है।

४. आत्म-हितकारी उपदेश देनेवाला होने से वही हितोपदेशी है।

५. मिथ्यात्व का नाश किए बिना धर्म का आरंभ नहीं होता।

६. आठों ही कर्म दु:ख के निमित्त हैं, कोई भी शुभाशुभ कर्म सुख का कारण नहीं है।

७. ज्ञानी भक्त आत्मशुद्धि के अलावा और कुछ नहीं चाहता।

———

पाठ दूसरा

पाप

पुत्र - पिताजी लोग कहते हैं कि लोभ पाप का बाप है, तो यह लोभ सबसे बड़ा पाप होता होगा ?

पिता - नहीं बेटा, सबसे बड़ा पाप तो मिथ्यात्व ही है, जिसके वश होकर जीव घोर पाप करता है।

पुत्र - पाँच पापों में तो इसका नाम है नहीं। उनके नाम तो मुझे याद हैं - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह।

पिता - ठीक है बेटा ! पर लोभ का नाम भी तो पापों में नहीं है किन्तु उसके वश होकर लोग पाप करते हैं, इसीलिए तो उसे पाप का बाप कहा जाता है; उसी प्रकार मिथ्यात्व तो ऐसा भयंकर पाप है कि जिसके छूटे बिना संसार-भ्रमण छूटता ही नहीं।

पुत्र - ऐसा क्यों ?

पिता - उल्टी मान्यता का नाम ही तो मिथ्यात्व है। जब तक मान्यता ही उल्टी रहेगी तब तक जीव पाप छोड़ेगा कैसे ?

पुत्र - तो, सही बात समझना ही मिथ्यात्व छोड़ना है ?

पिता - हाँ, अपनी आत्मा को सही समझ लेना ही मिथ्यात्व छोड़ना है। जब यह जीव अपनी आत्मा को पहिचान लेगा तो पाप भी छोड़ने लगेगा।

पुत्र - किसी जीव को सताना, मारना उसका दिल दुखाना ही हिंसा है न ?

पिता - हाँ, दुनिया तो मात्र इसी को हिंसा कहती है; पर अपनी आत्मा में जो मोह-राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं वे भी हिंसा हैं, इसकी खबर उसे नहीं।

पुत्र - ऐं ! तो फिर गुस्सा करना और लोभ करना आदि भी हिंसा होगी?

पिता - सभी कषायें हिंसा हैं। कषायें अर्थात् राग-द्वेष और मोह को ही तो भावहिंसा कहते हैं। दूसरों को सताना-मारना आदि तो द्रव्यहिंसा है।

पुत्र - जैसा देखा, जाना और सुना हो, वैसा ही न कहना झूठ है, इसमें सच्ची समझ की क्या जरूरत है ?

पिता - जैसा देखा, जाना और सुना हो, वैसा ही न कह कर अन्यथा कहना तो झूठ है ही, साथ ही जब तक हम किसी बात को सही समझेंगे नहीं, तब तक हमारा कहना सही कैसे होगा ?

पुत्र - जैसा देखा, जाना और सुना, वैसा कह दिया। बस छुट्टी।

पिता - नहीं ! हमने किसी अज्ञानी से सुन लिया कि हिंसा में धर्म होता है, तो क्या हिंसा में धर्म मान लेना सत्य हो जायेगा ?

पुत्र - वाह ! हिंसा में धर्म बताना सत्य कैसे होगा ?

पिता - इसीलिए तो कहते हैं कि सत्य बोलने के पहिले सत्य जानना आवश्यक है।

पुत्र - किसी दूसरे की वस्तु को चुरा लेना ही चोरी है ?

पिता - हाँ, किसी की पड़ी हुई, भूली हुई, रखी हुई वस्तु को बिना उसकी आज्ञा लिए उठा लेना या उठाकर किसी को दे देना तो

चोरी है ही, किन्तु यदि परवस्तु का ग्रहण भी न हो परन्तु ग्रहण करने का भाव ही हो, तो वह भाव भी चोरी है।

पुत्र - ठीक है, पर यह कुशील क्या बला है ? लोग कहते हैं कि पराई माँ-बहिन को बुरी निगाह से देखना कुशील है। बुरी निगाह क्या होती है ?

पिता - विषय-वासना ही तो बुरी निगाह है। इससे अधिक तुम अभी समझ नहीं सकते।

पुत्र - अनाप-शनाप रुपया-पैसा जोड़ना ही परिग्रह है न ?

पिता - रुपया-पैसा मकान आदि जोड़ना तो परिग्रह है ही, पर असल में तो उनके जोड़ने का भाव तथा उनके प्रति राग रखना और उन्हें अपना मानना परिग्रह है। इसप्रकार की उल्टी मान्यता को मिथ्यात्व कहते हैं।

पुत्र - हैं ! मिथ्यात्व परिग्रह है ?

पिता - हाँ ! हाँ !! चौबीस प्रकार के परिग्रहों में सबसे पहिला नम्बर तो उसका ही आता है। फिर क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषायों का।

पुत्र - तो क्या कषायें भी परिग्रह हैं ?

पिता - हाँ ! हाँ !! हैं ही। कषायें हिंसा भी हैं और परिग्रह भी। वास्तव में तो सब पापों की जड़ मिथ्यात्व और कषायें ही हैं।

पुत्र - इसका मतलब तो यह हुआ कि पापों से बचने के लिए पहिले मिथ्यात्व और कषायें छोड़ना चाहिए ?

पिता - तुम बहुत समझदार हो, सच्ची बात तुम्हारी समझ में बहुत जल्दी आ गई। जो जीव को बुरे रास्ते में डाल दे, उसी को तो पाप कहते हैं। एक तरह से दु:ख का कारण बुरा कार्य ही पाप है। मिथ्यात्व और कषायें बुरे काम हैं, अत: पाप हैं।

प्रश्न -

१. पाप कितने होते हैं ? नाम गिनाइये।

२. जीव घोर पाप क्यों करता है ?

३. क्या सत्य समझे बिना सत्य बोला जा सकता है ? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।

४. क्या कषायें परिग्रह हैं ? स्पष्ट कीजिए।

५. द्रव्यहिंसा और भावहिंसा किसे कहते हैं ?

६. पापों से बचने के लिए क्या करना चाहिए ?

७. सबसे बड़ा पाप कौन है और क्यों ?

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त वाक्य

१. दु:ख का कारण बुरा कार्य ही पाप है।

२. मिथ्यात्व और कषायें दु:ख के कारण बुरे कार्य होने से पाप हैं।

३. सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है।

४. मिथ्यात्व के वश होकर जीव घोर पाप करता है।

५. मिथ्यात्व छूटे बिना भव-भ्रमण मिटता नहीं।

६. उल्टी मान्यता का नाम ही मिथ्यात्व है।

७. सही बात समझकर उसे मानना ही मिथ्यात्व छोड़ना है।

८. आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह-राग-द्वेष ही भावहिंसा हैं, दूसरों को सताना आदि तो द्रव्यहिंसा है।

९. सत्य बोलने के पहिले सत्य समझना आवश्यक है।

१०. मिथ्यात्व और कषायें परिग्रह के भेद हैं।

११. सब पापों की जड़ मिथ्यात्व और कषायें ही हैं।

पाठ तीसरा

कषाय

सुबोध - भाई तुम तो कहते थे कि आत्मा मात्र जानता-देखता है, पर क्या आत्मा क्रोध नहीं करता; छल-कपट नहीं करता?

प्रबोध - हाँ ! हाँ !! क्यों नहीं करता ? पर जैसा आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है, वैसा आत्मा का स्वभाव क्रोध आदि करना नहीं। कषाय तो उसका विभाव है, स्वभाव नहीं।

सुबोध - यह विभाव क्या होता है ?

प्रबोध - आत्मा के स्वभाव के विपरीत भाव को विभाव कहते हैं। आत्मा का स्वभाव आनन्द है। मिथ्यात्व, राग, द्वेष (कषाय) आनन्द स्वभाव से विपरीत हैं, इसलिए वे विभाव हैं।

सुबोध - राग-द्वेष क्या चीज है ?

प्रबोध - जब हम किसी को भला जानकर चाहने लगते हैं, तो वह राग कहलाता है और जब किसी को बुरा जानकर दूर करना चाहते हैं, तो द्वेष कहलाता है।

सुबोध - और कषाय ?

प्रबोध - दिन-रात तो कषाय करते हो और यह भी नहीं जानते कि

वह क्या वस्तु है ? कषाय राग-द्वेष का ही दूसरा नाम है। जो आत्मा को कसे अर्थात् दु:ख दे, उसे ही कषाय कहते हैं। एक तरह से आत्मा में उत्पन्न होने वाला विकार राग-द्वेष ही कषाय है अथवा जिससे संसार की प्राप्ति हो वही कषाय है।

सुबोध - ये कषायें कितनी होती हैं ?

प्रबोध - कषायें चार प्रकार की होती हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ।

सुबोध - अच्छा तो हम जो गुस्सा करते हैं, उसे ही क्रोध कहते होंगे।

प्रबोध - हाँ भाई ! यह क्रोध बहुत बुरी चीज है।

सुबोध - तो हमें यह क्रोध आता ही क्यों है ?

प्रबोध - मुख्यतया जब हम ऐसा मानते हैं कि इसने मेरा बुरा किया तो आत्मा में क्रोध पैदा होता है। इसी प्रकार जब हम यह मान लेते हैं कि दुनियाँ की वस्तुएँ मेरी हैं, मैं इनका स्वामी हूँ, तो मान हो जाता है।

सुबोध - यह मान क्या है ?

प्रबोध - घमण्ड को ही मान कहते हैं। लोग कहते हैं कि यह बहुत घमण्डी है। इसे अपने धन और ताकत का बहुत घमण्ड है। रुपया-पैसा, शरीरादि बाह्य पदार्थ टिकने वाले तो हैं नहीं, हम व्यर्थ ही घमण्ड करते हैं।

सुबोध - कुछ लोग छल-कपट बहुत करते हैं?

प्रबोध - हाँ भाई ! वह भी तो कषाय है, उसे ही तो माया कहते हैं। कहते हैं मायाचारी मर कर पशु होते हैं। मायाचारी जीव के मन में कुछ और होता है, वह कहता कुछ और है और करता उससे भी अलग है। छल-कपट लोभी जीवों को बहुत होता है।

सुबोध - लोभ कषाय के बारे में भी कुछ बताइए ?

प्रबोध - यह बहुत खतरनाक कषाय है, इसे तो पाप का बाप कहा जाता है। कोई चीज देखी कि यह मुझे मिल जाय, लोभी सदा यही सोचा करता है।

सुबोध - यह तो सब ठीक है कि कषायें बुरी चीज हैं, पर प्रश्न तो यह है कि ये उत्पन्न क्यों होती हैं और मिटें कैसे ?

प्रबोध - मिथ्यात्व (उल्टी मान्यता) के कारण परपदार्थ या तो इष्ट (अनुकूल) या अनिष्ट (प्रतिकूल) मालूम पड़ते हैं, मुख्यतया इसी कारण कषाय उत्पन्न होती हैं। जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से परपदार्थ न तो अनुकूल ही मालूम हो और न प्रतिकूल, तब मुख्यतया कषाय भी उत्पन्न न होगी।

सुबोध - अच्छा तो हमें तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए। उसी से कषाय मिटेगी।

प्रबोध - हाँ ! हाँ !! सच बात तो यही है।

प्रश्न -

१. कषाय किसे कहते हैं ? कषाय को विभाव क्यों कहा ?

२. कषाय से हानि क्या है ?

३. क्या कषाय आत्मा का स्वभाव है ?

४. कषायें कितनी होती हैं ? नाम बताइये।

५. कषायें क्यों उत्पन्न होती हैं ? वे कैसे मिटें ?

६. आत्मा का स्वभाव क्या है ?

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त वाक्य -

१. जो आत्मा को कसे अर्थात् दु:खी करे, उसे कषाय कहते हैं।

२. कषाय राग-द्वेष का दूसरा नाम है।

३. कषाय आत्मा का विभाव है, स्वभाव नहीं।

४. आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है।

५. क्रोध गुस्सा को कहते हैं।

६. मान घमण्ड को कहते हैं।

७. माया छल-कपट को कहते हैं।

८. किसी वस्तु को देखकर प्राप्ति की इच्छा होना ही लोभ है।

९. मुख्यतया मिथ्यात्व के कारण परपदार्थ इष्ट और अनिष्ट भासित होने से कषाय उत्पन्न होती हैं।

१०. तत्त्वज्ञान के अभ्यास से जब परपदार्थ इष्ट और अनिष्ट भासित न हों तो मुख्यतया कषाय भी उत्पन्न न होगी।

पाठ चौथा

सदाचार

बाल-सभा

(कक्षा चार के बालकों की एक सभा हो रही है। बालकों में से ही एक को अध्यक्ष बनाया गया है। वह कुर्सी पर बैठा है।)

अध्यक्ष - (खड़े होकर) अब आपके सामने शान्तिलाल एक कहानी सुनायेंगे।

शान्तिलाल - (टेबल के पास खड़े होकर) माननीय अध्यक्ष महोदय एवं सहपाठी भाइयो और बहिनो !

अध्यक्ष महोदय की आज्ञानुसार मैं आपको एक शिक्षाप्रद कहानी सुनाता हूँ। आशा है आप शान्ति से सुनेंगे।

एक बालक बहुत हठी था। वह खाने-पीने का लोभी भी बहुत था। जब देखो तब अपने घर पर अपने भाई-बहिनों से जरा-जरा-सी चीजों पर लड़ पड़ता था, उसकी माँ उसे बहुत समझाती पर वह न मानता।

एक दिन उसके घर मिठाई बनी। माँ ने सब बच्चों को बराबर बाँट दी। सब मिठाई पाकर प्रसन्न होकर खाने लगे पर वह कहने लगा मेरा लड्डू छोटा है। दूसरे बच्चे तब तक लड्डू खा चुके थे, नहीं तो बदल दिया जाता। वह क्रोधी तो था ही, जोर-जोर से रोने

लगा और गुस्से में आकर लड्डू भी फैंक दिया। जाकर एक कोने में लेट गया। दिन भर खाना भी नहीं खाया। सबने बहुत मनाया पर वह तो घमण्डी भी था न, मानता कैसे ?

कोने में था एक बिच्छू और बिच्छू ने उसको काट खाया। उसे अपने किए की सजा मिल गई। दिन भर भूखा रहा, लड्डू भी गया और बिच्छू ने काट खाया सो अलग। क्रोधी, मानी, लोभी और हठी बालकों की यही दशा होती है। इसलिए हमें क्रोध, मान, लोभ एवं हठ नहीं करना चाहिए।

इतना कहकर मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

अध्यक्ष - (खड़े होकर) शान्तिलाल ने बहुत शिक्षाप्रद कहानी सुनाई है। अब मैं निर्मला बहिन से निवेदन करूँगा कि वे भी कोई शिक्षाप्रद बात सुनावें।

निर्मला - (टेबल के पास खड़ी होकर)

आदरणीय अध्यक्ष महोदय एवं भाइयो और बहिनों ! मैं आपके सामने भाषण देने नहीं आई हूँ। मैंने अखबार में कल एक बात पढ़ी थी, वही सुना देना चाहती हूँ।

एक गाँव में एक बारात आई थी। उसके लिए रात में भोजन बन रहा था। अंधेरे में किसी ने देख नहीं पाया और साग में एक साँप गिर गया। रात में ही भोज हुआ। सब बारातियों ने भोजन किया पर चार-पाँच आदमी बोले हम तो रात में नहीं खाते। सबने

उनकी खूब हँसी उड़ाई। ये बड़े धर्मात्मा बने फिरते हैं, रात में भूखे रहेंगे तो सीधे स्वर्ग जावेंगे।

पर हुआ यह कि भोजन करते ही लोग बेहोश होने लगे। दूसरों को स्वर्ग भेजने वाले खुद स्वर्ग की तैयारी करने लगे। पर जल्दी ही उन पाँचों आदमियों ने उन्हें अस्पताल पहुँचाया। वहाँ मुश्किल से आधों को बचाया जा सका। यदि वे भी रात में खाते तो एक भी आदमी नहीं बचता। इसलिए किसी को भी रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। इतना कहकर मैं अपना स्थान ग्रहण करती हूँ।

एक छात्र - (अपने स्थान पर ही खड़े होकर)

क्यों निर्मला बहिन ? रात के खाने में मात्र यही दोष है या कुछ और भी ?

अध्यक्ष - (अपने स्थान पर खड़े होकर) आप अपने स्थान पर बैठ जाइये। क्या आपको सभा में बैठना भी नहीं

आता ? क्या आप यह भी नहीं जानते कि सभा में इस प्रकार बीच में नहीं बोलना चाहिए तथा यदि कोई अति आवश्यक बात भी हो तो अध्यक्ष की आज्ञा लेकर बोलना चाहिए?

चूँकि प्रश्न आ ही गया है, अत: यदि निर्मला बहिन चाहें तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे इसका उत्तर दें।

निर्मला - (खड़े होकर) यह तो मैंने रात्रि भोजन से होने वाली प्रत्यक्ष सामने दिखने वाली हानि की ओर संकेत किया है, पर वास्तव में रात्रि भोजन में गृद्धता अधिक होने से राग की तीव्रता रहती है, अत: वह आत्म-साधना में भी बाधक है।

अध्यक्ष - (खड़े होकर) निर्मला बहिन ने बड़ी ही अच्छी बात बताई है। हम सबको यही निर्णय कर लेना चाहिए कि आज से रात में नहीं खायेंगे।

बहुत से साथी बोलना चाहते हैं पर समय बहुत हो गया है, अत: आज उनसे क्षमा चाहते हैं। उनकी बात अगली मीटिंग में सुनेंगे। मैं अब भाषण तो क्या दूँ पर एक बात कह देना चाहता हूँ।

मैं अभी आठ दिन पहले पिताजी के साथ कलकत्ता गया था। वहाँ वैज्ञानिक प्रयोगशाला देखने को मिली। उसमें मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि जो पानी हमें साफ दिखाई देता है, सूक्ष्मदर्शी से देखने पर उसमें लाखों जीव नजर आते हैं।

अत: मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि अब बिना छना

पानी कभी भी नहीं पीऊँगा। मैं आप लोगों से भी निवदेन करना चाहता हूँ, आप लोग भी यह निश्चय कर लें कि पानी छानकर ही पीयेंगे।

इतना कहकर मैं आज की सभा की समाप्ति की घोषणा करता हूँ।

(भगवान महावीर की जयध्वनिपूर्वक सभा समाप्त होती है।)

प्रश्न -

१. पानी छानकर क्यों पीना चाहिए ?
२. रात में भोजन से क्या हानि है ?
३. क्रोध करना क्यों बुरा है ?
४. हठी बालक की कहानी अपने शब्दों में लिखिए।
५. सभा-संचालन की विधि अपने शब्दों में लिखिए।

———

पाठ पाँचवाँ

गतियाँ

पुत्र - पिताजी ! आज मन्दिर में सुना कि ''चारों गति के मांहि प्रभु दु:ख पायो मैं घणों।'' ये चारों गतियाँ क्या हैं, जिनमें दु:ख ही दु:ख है।

पिता - बेटा ! गति तो जीव की अवस्था-विशेष को कहते हैं। जीव संसार में मोटे तौर पर चार अवस्थाओं में पाये जाते हैं, उन्हें ही चार गतियाँ कहते हैं। जब यह जीव अपनी आत्मा को पहिचानकर उसकी साधना करता है तो चतुर्गति के दु:खों से छूट जाता है और अपना अविनाशी सिद्ध पद पा लेता है, उसे पंचम गति कहते हैं।

पुत्र - वे चार गतियाँ कौन-कौन-सी हैं ?

पिता - मनुष्य, तिर्यंच, नरक और देव।

पुत्र - मनुष्य तो हम तुम भी हैं न ?

पिता - हम मनुष्यगति में हैं, अत:
मनुष्य कहलाते हैं। वैसे हैं तो
हम तुम भी आत्मा (जीव)। मनुष्यगति

जब कोई जीव कहीं से मरकर मनुष्यगति में

जन्म लेता है अर्थात् मनुष्य-शरीर धारण करता है तो उसे मनुष्य कहते हैं।

पुत्र - अच्छा तो हम मनुष्य गति के जीव हैं। गाय, भैंस, घोड़ा आदि किस गति में हैं ?

पिता - वे तिर्यंचगति के जीव हैं।
पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,
वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, हाथी,
घोड़े-कबूतर, मोर आदि पशु-
पक्षी जो तुम्हें दिखाई देते हैं,
वे सभी तिर्यंचगति में आते हैं। तिर्यञ्चगति

जब कोई जीव मरकर इनमें पैदा होता है तो वह तिर्यंच कहलाता है।

पुत्र - जब मनुष्यों को छोड़ कर दिखाई देने वाले सभी तिर्यंच हैं तो फिर नारकी कौन हैं ?

पिता - इस पृथ्वी के नीचे सात नरक हैं।
वहाँ का वातावरण बहुत ही कष्ट-
प्रद है। वहाँ पर कहीं शरीर को
जला देनेवाली भयंकर गर्मी और
कहीं शरीर को गला देने वाली
भयंकर सर्दी पड़ती है। भोजन-पानी
का सर्वथा अभाव है। वहाँ जीवों को नरकगति
भयंकर भूख, प्यास की वेदना सहनी पड़ती है। वे लोग तीव्र कषायी भी होते हैं, आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं, मारकाट मची रहती है।

जो जीव मरकर ऐसे संयोगों में जन्म लेते हैं, उन्हें नारकी कहते हैं।

पुत्र - और देव.....?

पिता - जैसे जिन जीवों के भाव होते हैं, उनके अनुसार उन्हें फल भी मिलता है। उनके उन्हें फल मिले ऐसे स्थान भी होते हैं। जैसे पाप का फल भोगने का स्थान नरकादि गति है, उसी प्रकार जो जीव पुण्य भाव करता है उनका फल भोगने का स्थान देवगति है। देवगति में मुख्यत: भोग-सामग्री प्राप्त रहती है।

देवगति

जो जीव मरकर देवों में जन्म लेते हैं, उन्हें देवगति के जीव कहते हैं।

पुत्र - अच्छी गति कौन-सी है ?

पिता - जब बता दिया कि चारों गति में दु:ख ही है तो फिर गति अच्छी कैसे होगी ? ये चारों संसार हैं।

इसे छोड़कर जो मुक्त हुए वे सिद्ध जीव पंचम गति वाले हैं। एकमात्र पूर्ण आनन्दमय सिद्धगति ही है।

पुत्र - मनुष्यगति को अच्छी कहो न ? क्योंकि इससे ही मोक्षपद मिलता है ?

पिता - यदि यह अच्छी होती तो सिद्ध जीव इसका भी परित्याग क्यों करते ? अत: चतुर्गति का परिभ्रमण छोड़ना ही अच्छा है ?

पुत्र - जब इन गतियों का चक्कर छोड़ना ही अच्छा है तो फिर यह जीव इन गतियों में घूमता ही क्यों है ?

पिता - जब अपराध करेगा तो सजा भोगनी ही पड़ेगी।

पुत्र - किस अपराध के फल में कौन-सी गति प्राप्त होती है ?

पिता - बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखने का भाव ही ऐसा अपराध है जिससे इस जीव को नरक जाना पड़ता है तथा भावों की कुटिलता अर्थात् मायाचार, छल-कपट तिर्यञ्चायु बंध के कारण हैं।

पुत्र - मनुष्य तथा देव.....?

पिता - अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह रखने का भाव और स्वभाव की सरलता मनुष्यायु के बंध के कारण हैं। इसी प्रकार संयम के साथ रहने वाला शुभभावरूप रागांश और असंयमांश मंदकषायरूप भाव तथा अज्ञानपूर्वक किये गये तपश्चरण के भाव देवायु के बंध के कारण हैं।

पुत्र - उक्त भाव बंध के कारण होने से अपराध ही हैं तो फिर निरपराध दशा क्या है ?

पिता - एक वीतराग भाव ही निरपराध दशा है, अत: वह मोक्ष का कारण है।

पुत्र - इन सबके जानने से क्या लाभ हैं ?

पिता - हम यह जान जावेंगे कि चारों गतियों में दु:ख ही दु:ख हैं, सुख नहीं और चतुर्गति भ्रमण का कारण शुभाशुभ भाव है, इनसे छूटने का उपाय एक वीतराग भाव है। हमें वीतराग भाव प्राप्त करने के लिए ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए।

प्रश्न -

१. गति किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार की होती हैं ?

२. तिर्यञ्चगति किसे कहते हैं ?

३. नरकगति के वातावरण का वर्णन कीजिए। ऐसे कौन-से कारण हैं जिनसे जीव नरकगति प्राप्त करता है ?

४. क्या देवगति में भी सुख नहीं है ? सकारण उत्तर दीजिए।

५. सबसे अच्छी गति कौन-सी है ? युक्तिसंगत उत्तर दीजिए।

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त वाक्य -

१. जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं।

२. जीव कहीं से मरकर मनुष्य-शरीर धारण करता है, उसे मनुष्यगति कहते हैं।

३. जीव कहीं से मरकर तिर्यञ्च-शरीर धारण करता है, उसे तिर्यञ्चगति कहते हैं।

४. जीव कहीं से मरकर नारकी-शरीर धारण करता है, उसे नरकगति कहते हैं।

५. जीव कहीं से मरकर देव-शरीर धारण करता है, उसे देवगति कहते हैं।

६. जीव अपनी आत्मा को पहिचान कर उसकी साधना द्वारा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर सिद्धपद पा लेता है, उसे पंचमगति कहते हैं।

७. एक वीतराग भाव ही पंचमगति (मोक्ष) का कारण है। वीतराग भाव प्राप्त करने के लिए ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए।

पाठ छठवाँ

द्रव्य

छात्र - गुरुजी, अम्मा कहती थी कि जो हमें दिखाई देता है, वह तो सब पुद्गल है। यह पुद्गल क्या होता है ?

अध्यापक - ठीक तो है। हमें आँखों से तो सिर्फ वर्ण (रंग) ही दिखाई देता है और वह मात्र पुद्गल में ही पाया जाता है।

जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाय, उसे पुद्गल कहते हैं। यह अजीव द्रव्य है।

छात्र - द्रव्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के हैं ?

अध्यापक - गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं। वे छह प्रकार के हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

छात्र - तो क्या द्रव्यों में अजीव नहीं है ?

अध्यापक - जीव को छोड़कर बाकी सब द्रव्य अजीव ही तो हैं। जिनमें ज्ञान पाया जाय वे ही जीव हैं। बाकी सब अजीव।

छात्र - जब द्रव्य छह प्रकार के हैं तो हमें दिखाई केवल पुद्गल ही क्यों देता है ?

अध्यापक - क्योंकि इन्द्रियाँ रूप, रस आदि को ही जानती हैं और

आत्मा आदि वस्तुएँ अरूपी हैं, अत: इन्द्रियाँ उनके ज्ञान में निमित्त नहीं हैं।

छात्र - ....पूजा पाठ को धर्मद्रव्य कहते होंगे और हिंसादिक को अधर्म द्रव्य।

अध्यापक - नहीं भाई ! वे धर्म और अधर्म अलग बात है; ये धर्म और अधर्म तो द्रव्यों के नाम हैं जो कि सारे लोक में तिल में तेल के समान फैले हुए हैं।

छात्र - इनकी क्या परिभाषा है ?

अध्यापक - जिस प्रकार जल मछली के चलने में निमित्त है, उसी प्रकार स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्गलों को चलने में जो निमित्त हो वही धर्म द्रव्य है तथा जैसे वृक्ष की छाया पथिकों को ठहरने में निमित्त होती है, उसी प्रकार गमन पूर्वक ठहरने वाले जीवों और पुद्गलों को ठहरने में जो निमित्त हो, वही अधर्म द्रव्य है।

छात्र - जब धर्म द्रव्य चलायेगा और अधर्म द्रव्य ठहरायेगा तो जीवों को बड़ी परेशानी होगी ?

अध्यापक - वे कोई चलाते ठहराते थोड़े ही हैं। जब जीव और पुद्गल स्वयं चलें या ठहरें तो मात्र निमित्त होते हैं।

छात्र - आकाश तो नीला-नीला साफ दिखाई देता ही है, उसे क्या समझना ?

अध्यापक - नहीं, अभी तुम्हें बताया था कि नीलापन-पीलापन तो पुद्गल की पर्याय है। आकाश तो अरूपी है, उसमें कोई रंग नहीं होता। जो सब द्रव्यों के रहने में निमित्त हो, वही आकाश है।

छात्र - यह आकाश ऊपर है न ?

अध्यापक - यह तो सब जगह है, ऊपर-नीचे, अगल में, बगल में। दुनियाँ की ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ आकाश न हो। सब द्रव्य आकाश में ही हैं।

छात्र - काल तो समय को ही कहते हैं या कुछ और बात है ?

अध्यापक - काल का दूसरा नाम समय भी है, किन्तु काल - जीव, पुद्गल की तरह एक द्रव्य भी है। उसमें जो प्रतिसमय अवस्था होती हैउसका नाम समय है। यह काल द्रव्य जगत के समस्त पदार्थों के परिणमन में निमित्त मात्र होता है।

छात्र - अच्छा तो ये द्रव्य हैं कुल कितने ?

अध्यापक - धर्म, अधर्म और आकाश तो एक-एक ही हैं, पर काल द्रव्य असंख्य हैं तथा जीव द्रव्य तो अनन्त हैं एवं पुद्गल जीवों से भी अनन्त गुणे हैं अर्थात् अनन्तानंत हैं।

छात्र - इन द्रव्यों के अलावा और कुछ नहीं है दुनिया में ?

अध्यापक - इनके अलावा कोई दुनियाँ ही नहीं है। छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं और विश्व को ही दुनियाँ कहते हैं।

छात्र - तो इस विश्व को बनाया किसने ?

अध्यापक - यह तो अनादि-अनन्त स्वनिर्मित है, इसे बनाने वाला कोई नहीं है।

छात्र - और भगवान कौन हैं ?

अध्यापक - भगवान दुनियाँ को जानने वाला है, बनाने वाला नहीं।

जो तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ जाने, वही भगवान है।

छात्र - आखिर दुनियाँ में जो कार्य होते हैं, उनका कर्ता कोई तो होगा?

अध्यापक - प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय (कार्य) का कर्ता है। कोई किसी का कर्ता नहीं है, ऐसी अनंत स्वतंत्रता द्रव्यों के स्वभाव में पड़ी हुई है। उसे जो पहिचान लेता है, वही आगे चलकर भगवान बनता है।

प्रश्न -

१. द्रव्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ? नाम गिनाइये।

२. विश्व किसे कहते हैं, इसे बनाने वाला कौन है ? भगवान क्या करते हैं?

३. प्रत्येक द्रव्य की अलग-अलग संख्या लिखें।

४. परिभाषा लिखिए -

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य।

५. इन्द्रियों की पकड़ में आने वाले द्रव्य को समझाइये।

६. आत्मा का स्वभाव क्या है ? वह इन्द्रियों से क्यों नहीं जाना जा सकता है ?

७. अजीव और अरूपी द्रव्यों को गिनाइये।

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त वाक्य

१. द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।

२. यह लोक (विश्व) अनादि-अनन्त स्वनिर्मित है।

३. गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

४. जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाये, वही पुद्गल है।

५. जिसमें ज्ञान पाया जाय, वही जीव है।

६. धर्म द्रव्य - स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्गलों की गति में निमित्त।

७. अधर्म द्रव्य - गमनपूर्वक ठहरने वाले जीवों और पुद्गलों के ठहरने में निमित्त।

८. आकाश द्रव्य - सब द्रव्यों के अवगाहन में निमित्त।

९. काल द्रव्य - सब द्रव्यों के परिवर्तन में निमित्त।

१०. सब द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों के कर्ता हैं, कोई भी पर का कर्ता नहीं है।

११. भगवान लोक को जानने वाला है, बनाने वाला नहीं।

१२. जीव को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य अजीव हैं।

१३. पुद्गल को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य अरूपी हैं।

१४. इन्द्रियाँ रूपी पुद्गल को जानने में ही निमित्त हो सकती हैं, आत्मा को जानने में नहीं।

———

पाठ सातवाँ

भगवान महावीर

अध्यापक - बालको ! कल भगवान महावीर का जन्मकल्याणक महोत्सव है। प्रातः प्रभात-फेरी निकलेगी। अतः सुबह पाँच बजे आना है और सुनो, शाम को महावीर चौक में आम सभा होगी, उसमें बाहर से पधारे हुए बड़े-बड़े विद्वान भगवान महावीर के सम्बन्ध में भाषण देंगे। तुम लोग वहाँ अवश्य पहुँचना।

पहला छात्र - गुरुजी ! बड़े विद्वानों की बातें तो हमारी समझ में नहीं आतीं। आप ही बताइये न, भगवान महावीर कौन थे? कब जन्मे थे?

अध्यापक - बच्चो ! भगवान जन्मते नहीं, बनते हैं। जन्म तो आज से करीब २६०५ वर्ष पहिले चैत्र शुक्ला १३ के दिन बालक वर्द्धमान का हुआ था। बाद में वह बालक वर्द्धमान ही आत्म-साधना का अपूर्व पुरुषार्थ कर भगवान महावीर बना।

दूसरा छात्र - इसका मतलब तो यह हुआ कि हमारे में से भी कोई भी आत्म-साधना कर भगवान बन सकता है। तो क्या वर्द्धमान जन्मते समय हम जैसे ही थे ?

अध्यापक - और नहीं तो क्या ? यह बात जरूर है कि वे प्रतिभाशाली, आत्मज्ञानी, विचारवान, स्वस्थ और विवेकी बालक थे। साहस तो उनमें अपूर्व था, किसी से कभी डरना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। अतः बालक उन्हें बचपन से वीर, अतिवीर कहने लगे थे।

तीसरा छात्र - उन्हें सन्मति भी तो कहते हैं ?

अध्यापक - उन्होंने अपनी बुद्धि का विकास कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था, अतः सन्मति भी कहे जाते हैं और सबसे प्रबल राग-द्वेषीरूपी शत्रुओं को जीता था, अतः महावीर कहलाये। उनके पाँच नाम प्रसिद्ध हैं - वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान और महावीर।

पहला छात्र - उनके जन्म कल्याणक के समय तो उत्सव मनाया गया

होगा ? जब हम आज भी उत्सव मनाते हैं, तो तब का क्या कहना ?

अध्यापक - हाँ, वे नाथवंशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला देवी था। उन्होंने तो उत्सव मनाया ही था, पर साथ ही सारी जनता ने यहाँ तक कि स्वर्ग के देव तथा इन्द्रादिकों ने भी उत्सव मनाया था।

दूसरा छात्र - उनका ही जन्मोत्सव क्यों मनाया जाता है, औरों का क्यों नहीं ?

अध्यापक - उनका यह अन्तिम जन्म था। इसके बाद तो उन्होंने जनम-मरण का नाश ही कर दिया। वे वीतराग और सर्वज्ञ बने। जन्म लेना कोई अच्छी बात नहीं है, पर जिस जन्म में जन्म-मरण का नाश कर भगवान बना जा सके, वही जन्म सार्थक है।

पहला छात्र - अच्छा तो आज जन्म-मरण का नाश करने वाले का जन्मोत्सव है।

दूसरा छात्र - गुरुजी, आपने उनके माता-पिता का नाम तो बताया, पर पत्नी और बच्चों का नाम तो बताया ही नहीं।

अध्यापक - उन्होंने शादी ही नहीं की थी। अत: पत्नी और बच्चो का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके माता-पिता कोशिश कर हार गये, पर उन्हें शादी करने को राजी न कर सके।

तीसरा छात्र - तो क्या वे साधु हो गये थे ?

अध्यापक - और नहीं तो क्या ? बिना साधु हुए कोई भगवान बन

सकता है क्या ? उन्होंने तीस वर्ष की यौवनावस्था में नग्न दिगम्बर साधु होकर घोर तपश्चरण किया था। लगातार बारह वर्ष की आत्मसाधना के बाद उन्होंने केवलज्ञान की प्राप्ति की थी।

पहला छात्र - इसका मतलब यह हुआ कि वे ४२ वर्ष की उम्र में केवलज्ञानी बन गये थे।

अध्यापक - हाँ, फिर उनका लगातार ३० वर्ष तक सारे भारतवर्ष में समवशरण सहित विहार तथा दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्व का उपदेश होता रहा। अंत में पावापुर में आत्मध्यान में लीन हो ७२ वर्ष की आयु में दीपावली के दिन मुक्ति प्राप्त की।

दूसरा छात्र - यह पावापुर कहाँ है ?

अध्यापक - पावापुर बिहार में नवादा रेल्वे स्टेशन के पास में है।

छात्र - तो दीपावली भी उनकी मुक्ति-प्राप्ति की खुशी में मनाई जाती है ?

अध्यापक - हाँ ! हाँ !! दीपावली कहो चाहे महावीर निर्वाणोत्सव, एक ही बात है। उसी दिन उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। वे गौतम गणधर के नाम से जाने जाते हैं।

पहला छात्र - वे तीस वर्ष तक क्या उपदेश देते रहे ?

अध्यापक - यह बात तो तुम विस्तार से शाम की सभा में विद्वानों के मुख से ही सुनना। मैं तो अभी उनके द्वारा दी गई दो-चार शिक्षायें बताये देता हूँ -

१. सभी आत्मायें बराबर हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है।
२. भगवान कोई अलग नहीं होते। जो जीव पुरुषार्थ करे, वही भगवान बन सकता है।
३. भगवान जगत की किसी भी वस्तु का कुछ कर्ता-हर्ता नहीं है, मात्र जानता ही है।
४. हमारी आत्मा का स्वभाव भी जानना-देखना है, कषाय आदि करना नहीं है।
५. कभी किसी का दिल दुखाने का भाव मत करो।
६. झूठ बोलना और झूठ बोलने का भाव करना पाप है।
७. चोरी करना और चोरी करने का भाव करना बुरा काम है।
८. संयम से रहो, क्रोध से दूर रहो और अभिमानी न बनो।
९. छल-कपट करना और भावों में कुटिलता रखना बहुत बुरी बात है।
१०. लोभी व्यक्ति सदा दुःखी रहता है।
११. हम अपनी ही गलती से दुःखी हैं और अपनी भूल सुधार कर सुखी हो सकते हैं।

प्रश्न -

१. भगवान महावीर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. उनकी क्या शिक्षायें थीं ?
३. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो -
दीपावली, महावीर-जयन्ती, पावापुर।
४. महावीर के कितने नाम हैं ? बताकर प्रत्येक की सार्थकता बताइये।
५. उनका ही जन्म-दिवस क्यों मनाया जाय ?

———

पाठ आठवाँ

जिनवाणी स्तुति

सवैया - मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है।।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवे को।
स्व पर पिछानवे को, परम प्रमानी है।।
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।।
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है।।

दोहा - हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहे, सो पावे सुख चैन।।
जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हो ढोक।।

जिनवाणी स्तुति का अर्थ

हे जिनवाणीरूपी सरस्वती ! तुम मिथ्यात्वरूपी अंधकार का नाश करने के लिए तथा आत्मा और परपदार्थों का सही ज्ञान कराने के लिए सूर्य के समान हो।

छहों द्रव्यों का स्वरूप जानने में, कर्मों की बन्ध-पद्धति का ज्ञान कराने में, निज और पर की सच्ची पहिचान कराने में तुम्हारी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

अत: हे जिनवाणी ! भव्य जीवों ने तुमको अपने हृदय में धारण कर रखा है, क्योंकि तुम आत्मानुभव करने का, आत्मा की प्रतीति करने का तथा किसी को दु:ख न हो, ऐसा - मार्ग बताने में समर्थ हो।

एकमात्र जिनवाणी ही संसार से पार उतारने में समर्थ है एवं सच्चे सुख को पाने का रास्ता बताने वाली है।

हे जिनवाणीरूपी सरस्वती ! मैं तेरी ही आराधना दिन-रात करता हूँ, क्योंकि जो व्यक्ति तेरी शरण में जाता है, वही सच्चा अतीन्द्रिय आनन्द पाता है।

जिस वीतराग-वाणी का ज्ञान हो जाने पर सारी दुनिया का सही ज्ञान हो जाता है, उस वाणी को मैं मस्तक नवाकर सदा नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न -

१. जिनवाणी की स्तुति लिखिए।
२. स्तुति में जो भाव प्रकट किये हैं, उन्हें अपनी भाषा में लिखिए।
३. जिनवाणी किसे कहते हैं ?
४. जिनवाणी की आराधना से क्या लाभ है ?

———

संकल्प -

'भगवान बनेंगे'

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्तभयों से नहीं डरेंगे।।
सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे।।
स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे।।
पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे।
गुरुजन का सम्मान करेंगे।।
जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे।।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे।।
निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोह भाव का नाश करेंगे।।
रागद्वेष का त्याग करेंगे।
और अधिक क्या? बोलो बालक!
भक्त नहीं, भगवान
ब न ें ग े । ।

पाठ पहला

देव-दर्शन

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।
पाये अनंते दुख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पान कर।।१।।
तब पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित्त पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै।।२।।
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आश्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपकों निर्जरूँ।।३।।

देव दर्शन का सारांश

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो ! आज मैंने महान पुण्योदय से आपके दर्शन प्राप्त किये हैं। आज तक आपको जाने बिना और अपने गुणों को पहिचाने बिना अनंत दु:ख पाये हैं।

मैंने इस संसार को अपना जानकर और सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहे गये, आत्मा का हित करने वाले वीतराग धर्म को पहिचाने बिना अनंत दु:ख प्राप्त किये हैं। आज तक मैंने संसार बढ़ाने वाले और सच्चे सुख का नाश करने वाले पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख मान कर, सुख के खजाने स्वपर-भेदविज्ञान रूप अमृत का पान नहीं किया है।।१।।

पर आज आपके चरण मेरे हृदय में बसे हैं, उन्हें देखकर कुबुद्धि और मोह भाग गये हैं। आत्मज्ञान की कला हृदय में जागृत हो गई है और मेरी रुचि आत्महित में लग गई है। सत्समागम में मेरा मन लगने लगा है। अत: मेरे मन में यह भावना जागृत हो गई है कि आपकी भक्ति ही में रमा रहूँ।

हे भगवन् ! यदि वचन बोलूँ तो आत्महित करने वाले प्रिय वचन ही बोलूँ। मेरा चित्त गुणीजनों के गान में ही रहे अथवा आत्महित के निरूपक शास्त्रों के अभ्यास में ही लगा रहे। मेरा मन दोषों के चिंतन और वाणी दोषों के कथन से दूर रहे।।२।।

मेरे मन में यह भाव जग रहे हैं कि वह दिन कब आयेगा जब मैं हृदय में समता भाव धारण करके, बारह भावनाओं का चिंतवन करके तथा ममतारूपी भूत (पिशाच) को भगाकर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण करूँगा। वह दिन कब आयेगा जब मैं दिगम्बर वेश धारण करके अट्ठाईस मूलगुणह धारण करूँगा, बाईस परीषहों पर विजय प्राप्त करूँगा और दश धर्मों को धारण करूँगा, सुख देने वाले बारह प्रकार के तप तपूँगा और आश्रव और बंध भावों को त्याग नये कर्मों को रोककर संचित कर्मों की निर्जरा कर दूँगा।।३।।

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ।।
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म का निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ।।
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दु:खद भवसागर तरूँ।।४।।

वह धन्य घड़ी कब होगी जब मैं अपने में ही रम जाऊँगा। कर्ता-कर्म के भेद का भी अभाव करता हुआ राग-द्वेष दूर करूँगा और आत्मा को पवित्र बना लूँगा - जिससे आत्मा में क्षायिक चारित्र प्रकट करके अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य से युक्त हो जाऊँगा। आनन्दकन्द जिनेन्द्रपद प्राप्त कर लूँगा। मेरा वह दिन कब आयेगा जब इस दु:खरूपी भवसागर को पार कर अमर पद प्राप्त करूँगा।।४।।
उक्त स्तुति में देव-दर्शन से लेकर देव (भगवान) बनने तक की भावना ही नहीं आई है किन्तु भक्त से भगवान बनने की पूरी प्रक्रिया ही आ गई है।

प्रश्न -

१. उक्त स्तुति में कोई भी एक छन्द जो तुम्हें रुचिकर हुआ हो, अर्थ सहित लिखिये एवं रुचिकर होने का कारण भी दीजिए।

पाठ दूसरा

पंच परमेष्ठी

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

यह पंच नमस्कार मंत्र है। इसमें सबसे पहिले पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी अरहत भगवानों को और सिद्ध भगवानों को नमस्कार किया गया है। उसके बाद वीतराग मार्ग में चलने वाले मुनिराजों को नमस्कार किया गया है जिनमें आचार्य, मुनिराज, उपाध्याय मुनिराज और सामान्य मुनिराज सब आ जाते हैं।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनको पंच परमेष्ठी कहते हैं। अरहंतादिक परमपद है और जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। पाँच प्रकार के होने से उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं।

अरहंत

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके अनंत चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य) रूप विराजमान हुए वे अरहंत हैं।

शास्त्रों में अरहंत के ४६ गुणों (विशेषणों) का वर्णन है। उसमें कुछ विशेषण तो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ आत्मा से। ४६ (छयालीस) गुणों में १० तो जन्म के अतिशय हैं, जो शरीर सं संबंध रखते हैं। १० केवलज्ञान के अतिशय हैं, वे भी बाह्य पुण्य सामग्री से संबंधित हैं तथा १४ देवकृत अतिशय तो स्पष्ट देवों द्वारा किए हुए हैं ही। ये सब तीर्थंकर अरहंतों के ही होते हैं, सब अरहंतों के नहीं। आठ प्रातिहार्य भी बाह्य विभूति हैं। किन्तु अनन्त चतुष्टय आत्मा से संबंध रखते हैं, अत: वे प्रत्येक अरहंत के होते हैं। अत: निश्चय से वे ही अरहंत के गुण हैं।

सिद्ध

जो गृहस्था अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधना द्वारा चार घाति कमोां का नाश होने पर अनंत चतुष्टय प्रकट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश ाहने पर समस्त अनय द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये है; लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गये हैं, जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये हैं; वे सिद्ध हैं। उनके आठ गुण कहे गये हैं -

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्मी वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

१. क्षायिक सम्यक्त्व ३. अनंत ज्ञान ५. अवगाहनत्व ७. अनंतवीर्य
२. अनंत दर्शन ४. अगुरुलघुत्व ६. सूक्ष्मत्व ८.अव्याबाध

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का सामान्य स्वरूप

आचार्य, उपाध्याय और साधु सामान्य से साधुओं में ही आ जाते हैं। जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्म अंगीकार करके अंतरंग में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं, जिनके कदाचित् मंदराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं, तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता है - ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं।

आचार्य

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की अधिकता से प्रधान पद प्राप्त करके मुनिसंघ के नायक हुए हैं तथा जो मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी-कभी रागांश के उदय से करुणाबुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा लेने वाले को योग्य जान दीक्षा देते हैं, अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित्त विधि से शुद्ध करते हैं - ऐसा आचरण करने और कराने वाले आचार्य कहलाते हैं।

उपाध्याय

जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर संघ में पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैंतथा जो समस्त शास्त्रों का सार आत्मस्वरूप में एकाग्रता है, अधिकतर तो उसमें लीन रहते हैं, कभी-कभी कषायांश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते हैं, औरों को पढ़ाते हैं - वे उपाध्याय हैं। ये मुख्यत: द्वादशाङ्ग के पाठी होते हैं।

साधु

आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त जो मुनिधर्म के धारक हैं और आत्मस्वभाव को साधते हैं, बाह्य २८ मूलगुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरंभ और अंतरंग परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान-ध्यान में लवलीन रहते हैं। सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है, अत: वे पूज्य हैं।

प्रश्न -

१. पंच परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

२. अरहंत और सिद्ध परमेष्ठियों का स्वरूप बतलाइये एवं उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।

पाठ तीसरा

श्रावक के अष्ट मूलगुण

प्रबोध - क्यों भाई ! इस शीशी में क्या है ?

सुबोध - शहद।

प्रबोध - क्यों ?

सुबोध - वैद्यजी ने दवाई दी थी और कहा था कि शहद या चीनी (शक्कर) की चासनी में खाना। अत: बाजार से शहद लाया हूँ।

प्रबोध - तो क्या तुम शहद खाते हो ? मालूम नहीं ? यह तो महान् अपवित्र पदार्थ है। मधु-मक्खियों का मल है और बहुत से त्रस-जीवों के घात से उत्पन्न है। इसे कदापि नहीं खाना चाहिए।

सुबोध - भाई, हम तो साधारण श्रावक हैं, कोई व्रती थोड़े ही हैं।

प्रबोध - साधारण श्रावक भी अष्ट मूलगुण का धारी और सप्त व्यसन का त्यागी होता है। मधु (शहद) का त्याग अष्ट मुलगुणों में आता है।

सुबोध - मूलगुण किसे कहते हैं और अष्ट मूलगुण में क्या-क्या आता है?

प्रबोध - निश्चय से तो समस्त पर-पदार्थों से दृष्टि हटाकर अपनी

आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ही मुमुक्षु श्रावक के मूलगुण हैं; पर व्यवहार से मद्य-त्याग, मांस-त्याग, मधु-त्याग और पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को अष्ट मूलगुण कहते हैं।

सुबोध - मधु-त्याग तो शहद के त्याग को कहते हैं, पर मद्य-त्याग किसे कहते हैं ?

प्रबोध - शराब वगैरह मादक वस्तुओं के सेवन करने का त्याग करना मद्य-त्याग है। यह पदार्थों को सड़ा-गलाकर बनाई जाती है, अत: इसके सेवन से लाखों जीवों का घात होता है तथा नाश उत्पन्न करने के कारण विवेक समाप्त होकर आदमी पागल-सा हो जाता है, अत: इसका त्याग करना भी अति आवश्यक है।

सुबोध - और मांस-त्याग क्यों आवश्यक है ?

प्रबोध - त्रस जीवों के घात (हिंसा) बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती है तथा मांस में निरन्तर त्रस जीवों की उत्पत्ति भी होती है। अत: मांस खाने वाला असंख्य त्रस जीवों का घात करता है, उसके परिणाम क्रूर हो जाते हैं। आत्महित के इच्छुक प्राणी को मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। अण्डा भी त्रस जीवों का शरीर होने से मांस ही है। अत: उसे भी नहीं खाना चाहिए।

सुबोध - और पंच उदुम्बर फल कौनसे हैं ?

प्रबोध - बड़ का फल, पीपल का फल, कठूमर (गूलर) और पाकरफल इन पाँच जाति के फलों को उदुम्बर फल कहते हैं। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन्हें भी न खावे।

सुबोध - मैंने प्रवचन में सुना था कि आत्मज्ञान बिना तो इन सबका त्याग कार्यकारी नहीं है, अत: हमें पहिले तो आत्मज्ञान करना चाहिए न ?

प्रबोध - भाई, आत्मज्ञान तो सच्चा मुक्ति का मार्ग है ही, पर यह बताओ क्या शराबी कबाबी को भी आत्मज्ञान हो सकता है ?

अत: आत्मज्ञान की अभिलाषा रखने वाले अष्ट मूलगुण धारण करते हैं।

प्रश्न -

१. मद्य-त्याग, मांस-त्याग और मधु-त्याग को स्पष्ट कीजिए ?

२. पंच उदुम्बर फल कौन-कौन-से हैं और उन्हें क्यों नहीं खाना चाहिए?

पाठ चौथा

इन्द्रियाँ

बेटी - माँ ! पिताजी जैन साहब क्यों कहलाते हैं ?

माँ - जैन हैं, इसलिए वे जैन कहलाते हैं। जिन का भक्त सो जैन या जिन-आज्ञा को माने से जैन। जिनदेव के बताये मार्ग पर चलने वाला ही सच्चा जैन है।

बेटी - और जिन क्या होता है ?

माँ - जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता वही जिन है।

बेटी - तो इन्द्रियाँ क्या हमारी शत्रु हैं जो उन्हें जीतना है ? वे तो हमारे ज्ञान में सहायक हैं। जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने में सहायक हैं वे ही तो इन्द्रियाँ हैं।

माँ - हाँ बेटी ! संसारी जीव को इन्द्रियाँ ज्ञान के काल में भी निमित्त होती हैं, पर एक बात यह भी तो हैं कि ये विषय-भोगों में उलझाने में भी तो निमित्त हैं। अत: इन्हें जीतने वाला ही भगवान बन पाता है।

बेटी - तो इन्द्रियों के भोगों को छोड़ना चाहिए, इन्द्रिय ज्ञान को तो नहीं?

माँ - तुम जानती हो कि इन्द्रियाँ कितनी हैं और किस ज्ञान में निमित्त हैं?

बेटी - हाँ ! वे पाँच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

माँ - अच्छा बोलो स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

बेटी - जिससे छू जाने पर हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कड़ा-नरम और ठंडा-गरम का ज्ञान कराना है, उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

माँ - जानता तो आत्मा ही है न ?

बेटी - हाँ ! हाँ !! इन्द्रियाँ तो निमित्त मात्र हैं। इसीप्रकार जिससे खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला और चरपरा स्वाद जाना जाता है, वही रसना इन्द्रिय है। जीभ को ही रसना कहते हैं।

माँ - और स्पर्शन क्या है ?

बेटी - स्पर्शन तो सारा शरीर ही है। हाँ ! और जिससे हम सूंघते हैं, वही नाक तो घ्राण इन्द्रिय कहलाती है, यह सुगन्ध और दुर्गन्ध के ज्ञान में निमित्त होती है।

माँ - और रंग के ज्ञान में निमित्त कौन है ?

बेटी - आँख ! इसी को चुक्ष कहते हैं। जिससे काला, नीला, पीला, लाल और सफेद आदि रंगों का ज्ञान हो, वही तो चक्षु इन्द्रिय है और जिनसे हम सुनते हैं, वे ही कान हैं; जिन्हें कर्ण या श्रोत्र इन्द्रिय कहा जाता है।

माँ - तू तो सब जानती है, पर यह बता कि ये पाँचों ही इन्द्रियाँ किस

वस्तु के जानने में निमित्त हुईं ?

बेटी - स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज व शब्दों के जानने में ही निमित्त हुईं।

माँ - स्पर्श, रस, गंध और वर्ण तो पुद्गल के गुण हैं, अतः इनके निमित्त से तो सिर्फ पुद्गल का ही ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान तो हुआ नहीं।

बेटी - आवाज व शब्दों का ज्ञान भी तो हुआ ?

माँ - वह भी तो पुद्गल की ही पर्याय है। आत्मा तो अमूर्तिक चेतन पदार्थ है, उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज शब्द हैं ही नहीं। अतः इन्द्रियाँ उसके जानने में निमित्त नहीं हो सकतीं।

बेटी - न हो तो न सही। जिसके जानने में निमित्त है, वही ठीक।

माँ - कैसे ? आत्मा का हित तो आत्मा के जानने में है, अतः इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ हुआ। जिसप्रकार इन्द्रिय सुख (भोग) हेय है, उसी प्रकार मात्र पर को जानने वाला इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है तथा अतीन्द्रिय आनन्द एवं अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

प्रश्न -

१. जैन किसे कहते हैं ?

२. इन्द्रियाँ किसे कहते हैं ? वे कितनी हैं ? नाम सहित बताइये।

३. इन्द्रियाँ किसको जानने में निमित्त हैं ?

४. क्या इन्द्रियाँ मात्र ज्ञान में ही निमित्त हैं ?

५. यदि इन्द्रियाँ ज्ञान में मात्र निमित्त हैं तो जानता कौन है ?

६. इन्द्रिय ज्ञान तुच्छ क्यों है ?

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त-वाक्य -

१. जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता सो जिन है।

२. जिन का भक्त या जिन आज्ञा को माने सो जैन है।

३. संसारी आत्मा को ज्ञान में निमित्त शरीर के चिह्न विशेष ही इन्द्रियाँ हैं।

४. जिससे छू जाने पर हल्का-भारी, रूखा-चिकना, ठंडा-गरम और कड़ा-नरम का ज्ञान हो, वही स्पर्शन इन्द्रिय है।

५. जो खट्टा, मीठा, खारा, चरपरा आदि स्वाद जानने में निमित्त हो, वह जीभ ही रसना इन्द्रिय कहलाती है।

६. सुगन्ध और दुर्गन्ध जानने में निमित्त रूप नाक ही घ्राण इन्द्रिय है।

७. रंगों के ज्ञान में निमित्त रूप आँख ही चक्षु इन्द्रिय है।

८. जो आवाज के ज्ञान में निमित्त हो, वही कर्णइन्द्रिय है।

९. ये इन्द्रियाँ मात्र पुद्गल के ज्ञान में ही निमित्त हैं, आत्मज्ञान में नहीं।

१०. इन्द्रिय सुख की भांति इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

पाठ पाँचवाँ

सदाचार

(भक्ष्याभक्ष्य विचार)

सुबोध - क्यों भाई प्रबोध ! कहाँ जा रहे हो ? चलो, आज तो चौराहे पर आलू की चाट खायेंगे। बहुत दिनों से नहीं खाई है।

प्रबोध - चौराहे पर और आलू की चाट! हमें कोई भी चीज बाजार में नहीं खाना चाहिए और आलू की चाट भी कोई खाने की चीज है? याद नहीं, कल गुरुजी ने कहा था कि आलू तो अभक्ष्य है?

सुबोध - यह अभक्ष्य क्या होता है, मेरी तो समझ में नहीं आता। पाठशाला में पण्डितजी कहते हैं - यही नहीं खाना चाहिएख, वह नहीं खाना चाहिए। औषधालय में वैद्यजी कहते हैं - यह नहीं खाना चाहिए, वह नहीं खाना। अपने को तो कुछ पसंद नहीं। जो मन में आए सो खाओ और मौज से रहो।

प्रबोध - जो खाने योग्य सो भक्ष्य और जो खाने योग्य नहीं सो अभक्ष्य है। यही तो कहते हैं कि अपनी आत्मा इतनी पवित्र बनाओ कि उसमें अभक्ष्य के खाने का भाव (इच्छा) आवे ही नहीं। यदि पण्डितजी कहते हैं कि अक्षक्ष्य का भक्षण मत करो तो तुम्हारे हित की ही कहते हैं क्योंकि अभक्ष्य खाने से और खाने के भाव से आत्मा का पतन होता है।

सुबोध - तो कौन-कौन से पदार्थ अभक्ष्य हैं ?

प्रबोध - जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो या बहुत से स्थावर जीवों का घात होता हो तथा जो पदार्थ भले पुरुषों के सेवन करने योग्य न हों या नशाकारक अथवा अस्वास्थ्यकर हों, वे सब अभक्ष्य हैं। इन अभक्ष्यों को पाँच भागों में बांटा गया है।

सुबोध - कौन-कौन से ?

प्रबोध - १. त्रसघात ३. अनुसेव्य ५. अनिष्ट

२. बहुघात ४. नशाकारक

जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो उन्हें त्रसघात कहते हैं, जैसे पंच उदुम्बर फल। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, इन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

जिन पदार्थों के खाने से बहुत (अनंत) स्थावर जीवों का घात होता हो उन्हें बहुघात कहते हैं। समस्त कंदमूल जैसे आलू, गाजर, मूली शकरकंद, लहसन, प्याज आदि पदार्थों में अनंत स्थावर निगोदिया जीव रहते हैं। इनके खाने से अनंत जीवों का घात होता है, अत: इन्हें भी नहीं खाना चाहिए।

सुबोध - और अनुपसेव्य ?

प्रबोध - जिनका सेवन उत्तम पुरुष बुरा समझें, वे लोकनिंद्य पदार्थ ही अनुपसेव्य हैं, जैसे लार, मल-मूत्र आदि पदार्थ है।

अनुपसेव्य पदार्थों का सेवन लोकनिंद्य होने से तीव्र राग के बिना नहीं हो सकता है, अत: वह भी अभक्ष्य है।

सुबोध - और नशाकारक ?

प्रबोध - जो वस्तुएँ नशा बढ़ाने वाली हों, उन्हें नशाकारक अभक्ष्य कहते हैं। अत: इनका भी सेवन नहीं करना चाहिए।

तथा जो वस्तु अनिष्ट (हानिकारक) हो, यह भी अभक्ष्य है, क्योंकि नुकसान करने वाली चीज को जानते हुए भी खाने का भाव अति तीव्र राग भाव हुये बिना नहीं होता, अत: वह त्याग करने योग्य है।

सुबोध - अच्छा, आज से मैं भी किसी भी अभक्ष्य पदार्थों को काम में नहीं लूँगा (भक्षय नहीं करूँगा)। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ, जो तुमने मुझे अभक्ष्य भक्षण के महापाप से बचा लिया।

प्रश्न -

१. अभक्ष्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?

२. अनुसेव्य से क्या समझते हो ? उसके सेवन से हिंसा कैसे होती है ?

३. किन्हीं चार बहुघात के नाम गिनाइये ?

४. नशाकारक अभक्ष्य से क्या समझते हो ?

पाठ छठवाँ

द्रव्य-गुण-पर्याय

छात्र - गुरुजी, आज अखबार में देखा था कि अब ऐसे अणुबमबन गये हैं कि यदि लड़ाई छिड़ गई तो विश्व का नाश हो जायेगा।

अध्यापक - क्या विश्व का भी कभी नाश हो सकता है ? विश्व तो छह द्रव्यों के समुदाय को कहते हैं और द्रव्यों का कभी नाश नहीं होता है, मात्र पर्याय पलटती है।

छात्र - विश्व तो द्रव्यों के समूह को कहते हैं और द्रव्य ?

अध्यापक - गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

छात्र - मन्दिरजी में सूत्रजी के प्रवचन में तो सुना था कि द्रव्य, गुण और पर्यायवान होता है (गुणपर्ययवद् द्रव्यम्)।

अध्यापक - ठीक तो है, गुणों में होने वाले प्रति समय के परिवर्तन को ही तो पर्याय कहते हैं। अत: द्रव्य को गुणों का समुदाय कहने में पर्यायें आ ही जाती हैं।

छात्र - गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं, यह तो समझा, पर गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक - जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों (प्रदेशों) में और उसकी

सम्पूर्ण अवस्थाओं (पर्यायों) में रहता है, उसको गुण कहते हैं। जैसे ज्ञान आत्मा का गुण है, वह आत्मा के समस्त प्रदेशों में तथा निगोद से लेकर मोक्ष तक की समस्त हालतों में पाया जाता है।

छात्र - आत्मा में ऐसे कितने गुण हैं ?

अध्यापक - आत्मा में ज्ञान जैसे अनंत गुण हैं। आत्मा में ही क्या समस्त द्रव्यों में, प्रत्येक द्रव्य में अपने-अपने अलग-अलग अनंत गुण हैं।

छात्र - तो हमारी आत्मा अनंत गुणों का भण्डार है ?

अध्यापक - भण्डार क्या है ? ऐसा थोड़े ही है कि आत्मा अलग हो और गुण उसमें भरे हों, जो उसे गुणों का भण्डार कहें, वह तो गुणमय ही है, वह तो गुणों का अखण्ड पिण्ड है।

छात्र - वे अनंत गुण कौन-कौन से हैं ?

अध्यापक - क्या बात करते हो, क्या अनंत भी गिनाये या बताए जा सकते हैं।

छात्र - कुछ तो बताइये ?

अध्यापक - गुण दो प्रकार के होते हैं, सामान्य और विशेष। जो गुण सब द्रव्यों में रहते हैं, उनको सामान्य गुण कहते हैं और जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में हों, उन्हें विशेष गुण कहते हैं। जैसे अस्तित्व गुण सब द्रव्यों में पाया जाता है, अत: वह सामान्य गुण हुआ और ज्ञान गुण सिर्फ आत्मा में ही पाया जाता है, अत: जीव द्रव्य का विशेष गुण हुआ।

छात्र - सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक - अनेक, पर उनमें छह मुख्य हैं - अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व।

जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी भी अभाव (नाश) न हो उसे अस्तित्व गुण कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व गुण है, अत: प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वयं से है, उसे किसी ने बनाया नहीं है और न ही उसे कोई मिटा ही सकता है क्योंकि वह अनादि अनंत है।

इसी अस्तित्व गुण की अपेक्षा तो द्रव्य का लक्षण 'सत्' किया जाता है, ''सत् द्रव्यलक्षणम्'' और सत् का कभी विनाश नहीं होता तथा असत् का कभी उत्पाद नहीं होता। मात्र पर्याय पलटती है।

छात्र - और वस्तुत्व.....?

अध्यापक - जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूत क्रिया) हो उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं। वस्तुत्व गुण की मुख्यता से ही द्रव्य को वस्तु कहते हैं।

कोई भी वस्तु लोक में पर के प्रयोजन की नहीं है, पर प्रत्येक वस्तु अपने-अपने प्रयोजन से युक्त है,क्योंकि उसमें वस्तुत्व गुण है।

छात्र - द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक - जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्था निरन्तर बदलती रहे, उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं। द्रव्यत्व गुण की मुख्यता से वस्तु को द्रव्य कहते हैं। एक द्रव्य में परिवर्तन का कारण कोई दूसरा द्रव्य नहीं है क्योंकि उसमें द्रव्यत्व गुण है, अत: उसे

परिणमन करने में पर की अपेक्षा नहीं है।

छात्र - इन तीनों गुणों में अन्तर क्या हुआ ?

अध्यापक - अस्तित्व गुण तो मात्र ''है'' यह बतलाता है, वस्तुत्व गुण ''निरर्थक नहीं है'' यह बताता है और द्रव्यत्व गुण ''निरन्तर परिणमनशील है'' यह बताता है।

छात्र - प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक - जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय हो उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

छात्र - बहुत-सी वस्तुएँ बहुत सूक्ष्म होती हैं, अत: वे समझ में नहीं आ सकतीं क्योंकि वे दिखाई ही नहीं देती हैं। जैसे हमारी आत्मा ही है, उसे कैसे जानें, वह तो दिखाई देती ही नहीं है।

अध्यापक - भाई ! प्रत्येक द्रव्य में ऐसी शक्ति है कि वह अवश्य ही जाना जा सकता है, यह बात अलग है कि वह इन्द्रियज्ञान द्वारा पकड़ में न आवे। जिनका ज्ञान पूरा विकसित हुआ है उनके ज्ञान (केवलज्ञान) में सब कुछ आ जाता है और अन्य ज्ञानों में अपनी-अपनी योग्यतानुसार आता है। अत: जगत को कोई भी पदार्थ अज्ञात रहे ऐसा नहीं बन सकता है।

छात्र - अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं।

अध्यापक - जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है, अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो जाता, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं हो जाता, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता और द्रव्य में रहने वाले अनंत गुण बिखर कर अलग-अलग नहीं हो जाते, उसे अगुरुलुघत्व गुण कहते हैं।

छात्र - और प्रदेशत्व.....?

अध्यापक - जिस शक्ति के कारणे द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

छात्र - सामान्य गुण तो समझ गया पर विशेष गुण और समझाइये ?

अध्यापक - बताया था न कि जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्यों में ही रहते हैं वे विशेष गुण हैं। जैसे जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्र सुख आदि। पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

छात्र - द्रव्य, गुण, पर्याय के जानने से क्या लाभ है ?

अध्यापक - हम तुम भी तो सब जीव द्रव्य हैं और द्रव्य गुणों का पिण्ड होता है, अत: हम भी गुणों के पिण्ड हैं। ऐसा ज्ञान होने पर ''हम दीन गुणहीन हैं'' - ऐसी भावना निकल जाती है तथा मेरे में अस्तित्व गुण है अत: मेरा कोई नाश नहीं कर सकता है, ऐसा ज्ञान होने पर अनंत निर्भयता आ जाती है।

ज्ञान हमारा गुण है, उसका कभी नाश नहीं होता। अज्ञान और राग-द्वेष आदि स्वभाव से विपरीत (विकारी पर्याय) हैं, इसलिए आत्मा के आश्रय से उनका अभाव हो जाता है।

प्रश्न -

१. द्रव्य किसे कहते हैं ?
२. गुण किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?
३. सामान्य गुण किसे कहते हैं ? वे कितने हैं ? प्रत्येक की परिभाषा लिखिए।
४. विशेष गुण किसे कहते हैं ? जीव और पुद्गल के विशेष गुण बताइए।
५. पर्याय किसे कहते हैं ?

पाठ सातवाँ

भगवान नेमिनाथ

बहिन - भाई साहब ! सुना है भगवान नेमिनाथ अपनी पत्नी राजुल को बिलखती छोड़कर चले गये थे।

भाई - भगवान नेमिनाथ तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी तो शादी ही नहीं हुई थी। अत: पत्नी को छोड़कर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बहिन - फिर लोग ऐसा क्यों कहते हैं ?

भाई - बात यह है कि नेमिकुमार जब राजकुमार थे तब उनकी सगाई जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजुल (राजमती) से हो गई थी। पर जब नेमिकुमार की बारात जा रही थी तब मरणासन्न निरीह मूक पशुओं को देख, संसार का स्वार्थपन और क्रूरपन लक्ष्य में आते ही, उनको संसार और भोगों से वैराग्य हो गया था। वे आत्मज्ञानी तो थे ही, अत: उसी समय समस्त बाह्य परिग्रह माता-पिता, धन-धान्य, राज्य आदि तथा अंतरंग परिग्रह राग-द्वेष का त्यागकर नग्न दिगम्बर साधु हो गये थे। बारात छोड़कर गिरनार की तरफ चले गये थे।

इसी कारण लोग कहते हैं कि वे पत्नी राजुल को छोड़ गये।

बहिन - ये नेमिनाथ कौन थे ?

भाई - सौरीपुर के राजा समुद्रविजय के राजकुमार थे, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। इनकी माता का नाम शिवादेवी था। ये बाईसवें तीर्थंकर थे। अन्य तीर्थंकरों के समान इनका भी जन्मकल्याणक बड़े ही उत्साह के साथ मनाया गया था।

आत्मबल के साथ-साथ उनका शारीरिक बल भी अतुल्य था।

उन्होंने राजकाज और विषयभोग को अपना कार्यक्षेत्र न बनाकर गिरनार की गुफाओं में शान्ति से आत्म-साधना करना ही अपना ध्येय बनाया। उन्होंने समस्त जगत से अपने उपयोग को हटाकर एकमात्र ज्ञानानन्द स्वभावी अपनी आत्मा में लगाया। आत्मज्ञानी तो वे पहिले से थे ही, आत्म-स्थिरता रूप चारित्र की श्रेणियों में बढ़ते हुए दीक्षा के ५६ दिन बाद आत्मकसाधना की चरम परिणति क्षपक श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) प्राप्त किया। तदनन्दर करीब सात सौ वर्ष तक लगातार समवशरण सहित सारे भारतवर्ष में उनका विहार होता रहा तथा उनकी दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्व-प्रचार होता रहा।

अन्त में गिरनार पर्वत से ही एक हजार वर्ष की आयु पूरी कर मुक्ति प्राप्त की।

बहिन - तो गिरनारजी ''सिद्धक्षेत्र'' इसीलिए कहलाता होगा? हाँ, गिरनार पर्वत नेमिनाथ की निर्वाणभूमि ही नहीं, तपो-भूमि भी है। राजुन ने भी वहीं तपस्या की थी तथा श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार और शम्बुकुमार भी वहीं से मोक्ष गये थे।

जैन समाज में शिखरजी के पश्चात् गिरनार सिद्धक्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न -

१. भगवान नेमिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

२. भगवान नेमिनाथ की तपो-भूमि और निर्वाण-भूमि का परिचय दीजिए।

पाठ आठवाँ

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है।।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है।।१।।
या जगमंदिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिन की धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन-हारी।।
तो किस भांति पदारथ पांति, कहाँ लहते रहते-अविचारी।
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं जिन वैन बड़े उपकारी।।२।।

यह जिनवाणी की स्तुति है। इसमें दीपशिखा के समान अज्ञानांधकार को नाश करने वाली पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को नमस्कार किया गया है।

जिनवाणी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिया गया तत्त्वोपदेश, उनके द्वारा बताया गया मुक्ति का मार्ग।

हे जिनवाणी-रूपी पवित्र गंगा ! तुम महावीर भगवान रूपी हिमालय पर्वत से प्रवाहित होकर गौतमगणधर के मुखरूपी कुण्ड में आई हो। तुम मोहरूपी महान् पर्वतों को भेदती हुई जगत् के अज्ञान और ताप (दु:खों) को दूर कर रही हो। सप्तभंगी रूप नयों की तरंगों से उल्लसित होती हुई ज्ञानरूपी समुद्र में मिल गई हो।

ऐसी पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को मैं अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार अञ्जलि में धारण करके शीश पर धारण करता हूँ।।१।।

इस संसाररूपी मंदिर में अज्ञानरूपी घोर अंधकार छाया हुआ है। यदि उस अज्ञानांधकार को नष्ट करने के लिए जिनवाणी रूपी दीपशिखा नहीं होती तो फिर तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप किस प्रकार जाना जाता ? वस्तुस्वरूप अविचारित ही रह जाता। अत: संत कवि कहते हैं कि जिनवाणी बड़ी ही उपकार करने वाली है, जिसकी कृपा से हम तत्त्व का सही स्वरूप समझ सके।।२।।

मैं उस जिनवाणी को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न -

१. जिनवाणी स्तुति की कोई चार पंक्तियाँ अर्थ सहित लिखिये।